अभिनन्दन

(छप्पय)

धवल हंस खग श्रेष्ठ, धवल दंतिन मनहारी,
धवल कौमुदी इन्दु, धवल मुक्ता दसनारी।
धवल सिद्ध शुभ वरण धवल कीर्ति लहकारी,
धवल हृदय के भाव कर्मदल देत विडारी।
धवल ध्यान, लेश्या धवल, धवल वीर वाणी जहा।
'शुक्ल' रच्यौ मिश्री गुरु धवल ज्ञान-धारा अहा!

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमल जी सचमुच 'मिश्री' की भाति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक है। उनके नाम के पूर्व 'मरुधर केसरी' और कही-कही 'कडकमिश्री' विशेपणो का भी प्रयोग होता है—यह विशेपण उनके व्यक्तित्व के वाह्य-आभ्यन्तर रूप को दर्शाते है।

मिश्री—की दो विशेपताए है, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही मुह मे पानी छूट जाता है। किन्तु उसका वाह्य आकार वडा कठोर है, यदि ढेले की तरह उसको फेककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शब्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन मे नही है ?

उनका हृदय वहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दुखी व सतप्त देखकर मोम की भाति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे वन्द कर लेने से जैसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दुखी देखकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते है, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त मे उसे आशीर्वाद देने को तत्पर हो जाते है। जीवदया, मानव-सेवा, सार्धमिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है!

उनका दूसरा रूप है—कठोरता! समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी अत्याचार देखते हैं, अनुशासनहीनता और साम्प्रदायिक द्वन्द्व, झगडे देखते है तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते है। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे इन दुर्गुणो व बुराइयो को खत्म करने के लिए कमर कस कर खडे हो जाते है। समाज मे जहा-तहा साम्प्रदायिक तनाव, विरोध और [illegible] के प्रसग होते है—वहा प्राय मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो की [illegible] [illegible] करती है [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] बार मे मरुधरकेसरी मुनिश्री मिश्रीमल जी महाराज के [illegible] [illegible] [illegible], अनुशासन और एकता व सगठन की तीव्र

तडप है। एकता व सगठन के क्षेत्र मे वे एक महत्त्वपूर्ण कडी की भाति स्थानकवासी श्रमण सघ मे सदा-सदा से सम्माननीय रहे है। समाज सेवा के क्षेत्र मे उनका देय बहुत बडा है। राजस्थान के अचलो मे गाव-गाव मे फैले शिक्षाकेन्द्र, ज्ञानभण्डार, वाचनालय, उद्योगमन्दिर, व धार्मिक साधना-केन्द्र उनके तेजस्वी कृतित्व के बोलते चित्र है। विभिन्न क्षेत्रो मे काम करने वाली लगभग ३५ सस्थाए उनकी सद्प्रेरणाओ से आज भी चल रही है, अनेक सस्थाओ, साहित्यिको, मुनिवरो, व विद्वानो को उनका वरद आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। वे अपने आप मे व्यक्ति नही, एक सस्था की तरह विकासोन्मुखी प्रवृत्तियो के केन्द्र है।

मुनिश्री आशुकवि है। उनकी कविताओ मे वीररस की प्रधानता रहती है, किन्तु वीरता के साथ-साथ विरक्ति, तपस्या और सेवा की प्रबल तरगे भी उनके काव्य-सरोवर मे उठ-उठ कर जन-जीवन को प्रेरणा देती रही है।

श्री मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो का विशाल साहित्य सकलित किया पडा है, उसमे से अभी बहुत कम प्रवचन ही प्रकाश मे आये है। इन प्रवचनो को साहित्यिक रूप देने मे तपस्वी कविरत्न श्री रूपचन्दजी महाराज 'रजत' का बहुत बडा योगदान रहा है। उनकी अन्तर्-इच्छा है कि मरुधरकेसरी जी महाराज का सम्पूर्ण प्रवचन-साहित्य एक माला के रूप मे सुन्दर, रुचिकर और नयनाभिराम ढग से पाठको के हाथो मे पहुचे। श्री 'रजत' मुनि जी की यह भावना साकार होगी तो अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र मे अनेक महत्त्वपूर्ण कृतिया हमे प्राप्त हो सकेगी। विद्याप्रेमी श्री सुकन मुनिजी की प्रेरणाओ से इन प्रवचनो का सम्पादन एव प्रकाशन शीघ्र हो गति पर आया है, और आशा है भविष्य मे भी आता रहेगा।

मुझे विश्वास है, प्रवचनो के पाठक एक नई प्रेरणा और कर्त्तव्य की स्फूर्ति प्राप्त कर कृतार्थता अनुभव करेंगे।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अनुक्रमणिका

१	स्वभाव-रमण	१
२५	आत्म-स्वरूप	२
३७	सम्यक्दर्शन की प्राप्ति कैसे हो ?	३
५६	आत्मा और कर्म	४
७२	आत्म-सिद्धि	५
८७	विश्वमैत्री का मन्त्र	६
१०२	समाधि कैसे प्राप्त हो ?	७
१२४	संयम-साधना	८
१४७	जीवन का आदर्श	९
१६४	ऊर्ध्वमुखी चिन्तन	१०
१८०	संघ-व्यवस्था में आचार्य का महत्त्व	११
१९५	मनुष्य की चार श्रेणियां	१२
२०८	तीन प्रकार के स्थविर	१३
२२१	समन्वयवाद	१४
२४२	लोकपाल या आत्मपाल	१५
२५६	आज के बुद्धिवादी	१६
२७५	जीवन की सार्थकता	१७
२८४	कर्मयोग	१८
२९५	सेवाधर्म परम गहन है	१९
३०८	साधना का मार्ग	२०

धवल ज्ञान-धारा

भी परिवर्तन आया, चेहरे पर भी उतार-चढाव आया और वचनो मे भी आगया।

काटा घुमाने वाला

परन्तु विचारणीय बात यह है कि यह काटा घुमानेवाला कौन है? क्योकि बिना घुमानेवाले के तो काटा घूमना सम्भव नही है? घडी मे जब चाबी भरी होती है, तभी काटे घूमते है। आपके सामने घडी मे तीन काटे घूम रहे है—एक घटे का, दूसरा मिनिट का और तीसरा सैकिण्ड का। इसके अतिरिक्त किसी-किसी घडी मे तारीख का भी काटा रहता है। वह भी घूमता रहता है। ये सब अपनी-अपनी गति के अनुसार घूम रहे है। इन सबकी चाबी यद्यपि एक है, तथापि सब काटो की गति भिन्न-भिन्न ही हो रही है। इसी प्रकार मन की चाबी के साथ भावो की श्रेणी भी इधर-उधर होती रहती है। एक ओर आपने सुगन्धित पुष्पो का सजाया हुआ गुलदस्ता देखा, जिसे कि एक व्यक्ति आपको सादर समर्पण कर रहा है। दूसरी ओर से एक व्यक्ति आपको मन-भरा वचन दे रहा है। यद्यपि दोनो व्यक्ति एक साथ दोनो वस्तुए आपको दे रहे है, तथापि आपके भावो मे परिवर्तन भिन्न-भिन्न रूप का एक साथ आया। इनमे से एक तो आपके लिए ग्राह्य है और दूसरा अग्राह्य है।

भाइयो, इस प्रकार की उच्च और नीच भाव की प्रवृत्तिया-मनोवृत्तिया आपके भीतर चलती है, तब तक समझना चाहिए कि आप समभाव मे नही आये है। और विषम भावो मे ही चल रहे है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे इस प्रकार राग-द्वेष की दो विषम धाराए चलती रहती है। जब तक हमारे और आपके भीतर ये दोनो धाराए प्रवाहित हो रही है, तब तक हमारा या आपका [illegible] हो सकता है। जब एक समताभाव की धारा बहेगी, तभी हमारा—आपका [illegible] पार होगा—कार्य सिद्ध होगा।

[illegible] है। [illegible] की खरीद की। [illegible] मे दस [illegible] आगई। [illegible] कुछ नही। [illegible] कि [illegible]

और हमने इस तेजी मे इतना कमाया। जब मन्दी की धारा बहती है, तब घाटा उठाना पड़ता है। इस तेजी-मन्दी के प्रवाह मे कितने ही लोग कमा लेते है और कितने ही गाठ की पू जी भी गवा बैठते हैं।

भाइयो, इसलिए परिणामो की धारा एक होना चाहिए। इसीलिए भगवद्-वाणी भी चेतावनी दे रही है कि "हे मुमुक्षुओ ! तुम पदार्थों को देखकर और उनकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियो को देखकर अपनी प्रवृत्ति को भी भली-बुरी बनाते हो, यह अच्छा नही है। अपनी प्रकृति को एक रूप रखो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।"

एकरूपता कैसे रखें ?

यहा पर आप पूछे कि महाराज, अपनी प्रकृति को एक रूप कैसे रखे ? वह तो कभी इधर भलाई की ओर जाती है और कभी उधर बुराई की ओर जाती है। तो भाई, यह आपका केवल भ्रम है। कुदरत की कारीगरी मे—प्रकृति की सृष्टि मे—ऐसी बात नही है। कुदरत या प्रकृति ने तो यह बताया है कि जिसको तू अभी मित्र मान रहा है, वही कुछ समय के पश्चात् तेरा शत्रु बन जायगा। और जिसे अभी तू शत्रु मान रहा है, वही कुछ समय के पश्चात् तेरा मित्र बन जायगा। तू तो यह धारणा करके बैठ गया है कि यह तो मेरा मित्र है और यह मेरा शत्रु है। जबकि ऐसी धारणा भ्रान्त है। इसलिए इस बात पर आ जा कि न कोई मेरा मित्र है और न कोई मेरा शत्रु है। क्योकि वस्तु मे सदा परिवर्तन होता रहता है। आचार्य कहते हैं कि—

अनादौ सति संसारे कस्य केन न बन्धुता।
सर्वथा शत्रुभावश्च, सर्वमेतद्धि कल्पना॥

यह ससार अनादि है। इसमे परिभ्रमण करते हुए जीवो मे किसकी किसके साथ बन्धुता और मित्रता नही हुई है ? और किसकी किसके साथ शत्रुता नही हुई है। अरे, सभी की सभी के साथ असख्य बार शत्रुता भी हुई है और असख्य बार सब की सबके साथ मित्रता और बन्धुता भी हुई है। जहा जिसका जिसके साथ या जिसके द्वारा स्वार्थ साधन हो गया, वहा वह उसे मित्र या बन्धु मानने लगता है और जहा जिसका जिसके साथ स्वार्थ नही

सधा, वहा वह उसे शत्रु मानने लगता है। इसे आचार्य कहते है कि "यह मेरा मित्र है और यह मेरा शत्रु है, ऐसी धारणा ही काल्पनिक है, मिथ्या है। वास्तव मे न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है।" और भी कहा है—

बन्धुत्व शत्रुभूय च, कल्पनाशिल्पिनिर्मितम्।
अनादौ सति ससारे तद्-द्वय कस्य केन न॥

अरे आत्मन्, यह बन्धुता और शत्रुता तो कल्पनारूपी शिल्पी (कारीगर) के द्वारा निर्मित है—यथार्थ नही है। क्योकि इस ससार मे अनादिकाल से सभी जीव घूमते हुए चले आ रहे है, इसलिए यह शत्रुता और बन्धुता दोनो ही किसकी किसके साथ नही हुई है। इसलिए मनुष्य को इस काल्पनिक शत्रु या मित्र के भ्रम मे नही पडना चाहिए।

आत्मा तो सदा ज्ञान-दर्शनमय एक स्वभावरूप है। जब एक स्वभाव है, तब अन्य वस्तुओ के सयोग होने पर हमे अपने स्वभाव को क्यो बदलना चाहिए? यदि मेरा स्वभाव बदलता है तो यह मेरी दुर्बलता है—कमजोरी है। अभी तक गुरुजनो ने मुक्ति का मार्ग तो मुझे ठीक बताया है। परन्तु मैं उसका पथिक नही बन पाया हू। जैसे कोई पथिक चल रहा है। चलते हुए आगे दो मार्ग आ गये। पथिक विचारता है कि इस पूर्वी मार्ग से जाऊ, या इस पश्चिमी मार्ग से जाऊ? इस द्विविधा मे पडकर जब खडा रह जाता है, तब वह एक भी मंजिल को पार नही कर पाता है। कहा भी है—'दुविधा मे दोनो गये, माया मिली न राम।' दुविधा मे पडा हुआ व्यक्ति किंकर्तव्य-विमूढ हो जाता है। इसी प्रकार सभी ससारी जीवो की आत्मा विभ्रम मे पडी हुई है। इसलिए उसे अपना स्वरूप प्राप्त नही होता। कहा भी है—

[illegible] [illegible] मे [illegible] [illegible],
[illegible] की [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] को [illegible] [illegible] नींद [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible]॥

उदैबल जोर यह स्वास को सबद घोर,
विषय सुख कारज मे दौर रहे सपना।
ऐसी मूढ दशा मे मगन रहै तिहूंकाल,
धावै भ्रमजाल मे, न पावे रूप अपना॥

भाई, यह काया, यह मिट्टी का पुतला तो चित्रशाला के रूप मे है। यहा कर्मरूपी पलग पडा हुआ है। यहा आप पूछे कि साहब, यह वात तो ठीक नही है, क्योकि पलग के तो चार पाये होते है ? इसका उत्तर यह है कि घन-घाती कर्म भी चार ही होते हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। आत्मा के भीतर मोह का पलग पडा हुआ है और उस पर माया की गादी बिछी हुई है। उस पर कल्पना की चादर पडी हुई है। क्योकि यह करना है, वह करना है, ऐसी नाना प्रकार की कल्पनाए हमारे हृदय मे सदा उत्पन्न होती रहती हैं। परन्तु उनका करना आपके वश मे नही है। वे तो कर्म के उदय-वल से आप ही प्रगट होती रहती है। इसलिए वे सब कल्पना मात्र ही है। वे तो शेखचिल्ली के विचारो के समान है। अरे, तुझे तो यह भी पता नही है कि क्षण भर के वाद क्या होने वाला है ? तू क्या कर सकता है ? कुछ भी नही।

हा, तो इस प्रकार आत्माराम के इस देहरूपी भवन मे मोहरूपी शैया बिछी हुई है। इस पर आनन्दघन चेतन आत्माराम ने लेट लगा दी और वह अचेतनता की नींद लेने लगा। अर्थात् इस चेतन को काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि विभाव परिणति की नीद आ गई और फिर मोह का जोरदार खुर्राटा खीचने लगा। यद्यपि उस दशा मे आत्मा चाहती है कि मैं अपनी आखे खोलू ? परन्तु खोल नही पाता है। जैसे आपको जब गहरी नीद आ जाती है, तब आखे खोलना चाहते हैं, परन्तु जाग नही पाते है। अब उसे आपको घर वाले पुकार कर कहते है—अरे, जाग जा। परन्तु आप कहते हैं—मैं क्या करू, मेरी तो आखे ही नही खुलती है। मुझे अभी और सोने दो। इसी प्रकार से मोह को मरोडा हे। यह चेतन जागना चाहता ह, परन्तु मोह जगने नही देता हे। यह आत्मा उस मोह के चक्कर मे क्यो आया ? क्योकि कर्म का

उदय-बल है। जो पहिले कर्म बाधे है, वे उदय मे आ गये। और उदय मे आये हुए कर्म को जब तक ठीक रीति मे यह जीव भोग नही लेता है, तब तक वह दूसरा काम अच्छे प्रकार से कर नही सकता है। जो उदयगत कर्म है, उसे तो भोगे ही सरता है।

विषय-भोग मे हिंसा

तीर्थंकर भगवान ने फरमाया है कि 'घाये घाये असखेज्जा' अर्थात् स्त्री-सेवन के प्रत्येक आघात मे असख्यात सम्मूर्च्छनज योनि-गत जीवो की हिंसा होती है। परस्त्री और वेश्या सेवन की तो बात ही बहुत दूर है। किन्तु जो अपनी स्त्री का भी सेवन करता है, वह भी द्रव्य और भाव दोनो प्रकार की हिंसा का भागी होता है। शास्त्रकार कहते है—

स्त्रिय भजन्, भजत्येव रागद्वेषौ हिनस्ति च।
योनि जन्तून् बहून् सूक्ष्मान् हिंस्र स्वस्त्री रतोऽप्यत ॥

अर्थात्—जो अपनी स्त्री का भी सेवन करता है, उसमे राग भाव की अधिकता आदि होने से वह भावहिंसा का भागी होता है। और योनि के भीतर उत्पन्न होने वाले बहुत से सूक्ष्म जीवो का घात करने से द्रव्यहिंसा का भागी होता है। इस प्रकार स्वस्त्री मे रति करने वाला जीव भी हिंसक है।

स्त्रियो की योनि मे रक्त के निमित्त से सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति होती है, इसे प्रसिद्ध चरक ऋषि भी अपनी चरक-संहिता मे कहते है—

रक्तजा कृमय सूक्ष्मा मृदुमेध्यादिशक्तय।
जन्मवर्त्मसु कण्डूति जनयन्ति तथाविधाम् ॥

अर्थात्—रक्त से उत्पन्न सूक्ष्म और कोमल मज्जा आदि की शक्ति वाले कृमि (कीड़े) जन्ममार्गों (योनियो) मे खुजली को उत्पन्न करते है, जिससे [illegible] होती है। और पुरुष-प्रसग से ये सब जीव मर जाते है। [illegible] कहा है—

हिंस्यन्ते तिलनाल्या तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।
बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत् ॥

[illegible]

उदय-बल है। जो पहिले कर्म बांधे हैं, वे उदय मे आ गये। और उदय मे आये हुए कर्म को जब तक ठीक रीति से यह जीव भोग नही लेता है, तब तक वह दूसरा काम अच्छे प्रकार से कर नही सकता है। जो उदयगत कर्म है, उसे तो भोगे ही सरता है।

विषय-भोग मे हिंसा

तीर्थंकर भगवान ने फरमाया है कि 'घाये घाये असखेज्जा' अर्थात् स्त्री-सेवन के प्रत्येक आघात मे असख्यात सम्मूर्च्छनज योनि-गत जीवो की हिंसा होती है। परस्त्री और वेश्या सेवन की तो बात ही बहुत दूर है। किन्तु जो अपनी स्त्री का भी सेवन करता है, वह भी द्रव्य और भाव दोनो प्रकार की हिंसा का भागी होता है। शास्त्रकार कहते है—

> स्त्रिय भजन्, भजत्येव रागद्वेषौ हिनस्ति च।
> योनि जन्तून् बहून् सूक्ष्मान् हिंस्र स्वस्त्री रतोऽप्यत ॥

अर्थात्—जो अपनी स्त्री का भी सेवन करता है, उसमे राग भाव की अधिकता आदि होने से वह भावहिंसा का भागी होता है। और योनि के भीतर उत्पन्न होने वाले बहुत से सूक्ष्म जीवो का घात करने से द्रव्यहिंसा का भागी होता है। इस प्रकार स्वस्त्री मे रति करने वाला जीव भी हिंसक है।

स्त्रियो की योनि मे रक्त के निमित्त से सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति होती है, इसे प्रसिद्ध चरक ऋषि भी अपनी चरक-संहिता मे कहते है—

> रक्तजा कृमय सूक्ष्मा मृदुमध्यादिशक्तय ।
> जन्मवर्त्मसु कण्डूति जनयन्ति तथाविधाम् ॥

अर्थात्—रक्त से [illegible] सूक्ष्म और कोमल मज्जा आदि की शक्ति वाले [illegible] जन्ममार्गों (योनियों) मे [illegible] को उत्पन्न करते हैं, जिससे कि [illegible] होती है। और पुरुष-प्रसंग मे वे सब जीव मर जाते [illegible] कहा है—

> [illegible] तिलनाल्या तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।
> बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत् ॥

[illegible]

पर सब मिल जल-भुन जाते है। उसी प्रकार पुरुष के मैथुन करने पर स्त्री की योनि मे जो बहुत जीव उत्पन्न होते है, वे भी पुरुष-लिंग की उष्णता के सम्पर्क से मर जाते है।

इन सब प्रमाणो से सिद्ध है कि जो काम-विलासी जीव है, वे स्त्री-संयोग करने पर असंख्य जीवो का घात करते है। यहां कोई प्रश्न करे कि फिर तीर्थंकरो ने विवाह क्यो किया? इसका उत्तर यह है कि उनके भी इस प्रकार के चारित्रमोह कर्म का उदय आया, तो उन्हे भी उस प्रकार के भोगो को भोगने के लिए विवश होना पड़ा। क्योंकि उदय मे आये हुए कर्मो का भोग बिना छुटकारा नही हो सकता। जो जो बलाबल से परमाणु निकलता है, वे निकले बिना नही रहते। भगवान् ने स्वय ही कहा है—

'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि' अर्थात् किये हुए कर्मो का फल भोगे बिना मोक्ष नही मिल सकता है।

हाँ, तो यह चेतन आत्माराम मोह की गहरी निद्रा मे सो रहा है। इसे नींद मे भोगरूपी स्वप्न आया कि मै परदेश गया, वहा पर खूब व्यापार किया और अपार धन कमाया। फिर मैने विवाह की तैयारी की और बारात सजाकर ले गया। एक सुन्दर स्त्री से शादी की और घर लाकर उसके साथ विषय-सेवन कर रहा है। यह सब भोग का स्वप्न है। इसी प्रकार से अन्य अनेक स्वप्न [illegible] मे यह आत्माराम देखता रहता है और उन-उन स्वप्नावस्था मे [illegible] प्राप्त होती है तदनुसार यह उनमे तन्मय रहता है और [illegible]। इसे पता ही नही चलता है कि मै क्या कर रहा [illegible]

[illegible]

भूल-भुलैया

भाइयो, देखो—कितने आश्चर्य की बात है कि पहिले की जो पूजी है, उसकी तो यह आत्माराम रखवाली कर नही पा रहा है, उसके लिए बेचैन और चिन्तातुर है कि इसकी कैसे रक्षा करू ? किन्तु नयी पूजी कमाने के लिए, धन-सग्रह करने के लिए दौड-धूप कर रहा है। बताओ फिर यह उसे कैसे सम्भालेगा ?

और भी देखो—किसी सेठ के चार लडके है। उसने बडे लडके की शादी कर दी। शादी होते ही वह अपने मा-बाप से अलग हो गया। उसने मा-बाप की सुधि लेना भी छोड दिया। फिर सहायता देने और सेवा-टहल की तो बात ही दूर है। अब वह सेठ कहता है कि दूसरे लडके का विवाह करना है। अरे भाई, पहिले ने तुझे कौन सी सुख-शान्ति दे दी और अपने कर्त्तव्य का कौन-सा पालन किया। परन्तु इसकी कोई चिन्ता न करके दूसरे लडके का भी विवाह कर दिया। विवाह होते ही दुर्भाग्य से वह भी बाप से अलग हो गया। अब बाप दो लडको के सुख से वचित हो गया। फिर भी वह तीसरे लडके की शादी का आयोजन करने लगा। तब किसी हितैषी बन्धु ने आकर कहा—अरे, दो विवाहित लडको ने तुझे कौन-सा सुख पहुचाया है ? कौन-सी सेवा की है ? फिर भी वह कहता है कि इसे परणाना तो पडेगा ही। अब उसने तीसरे लडके को भी परणा दिया। परन्तु बदकिस्मती से उसने भी अपने दोनो बडे भाइयो का अनुकरण किया और शादी होते ही मा-बाप से अलग हो गया। अब देखो—मा-बाप को क्या सुख मिला ! उसने अपना जीवन पूरा दुखदायी बना लिया। इस प्रकार वह लडको की शादियां करता भी जाता है और पश्चात्ताप भी करता जाता है कि मैने इनकी शादियां करके बडी भूल की है। [illegible] भूल क्या की ? तू तो भूल पर भूल करता ही जा रहा है और अब [illegible] लडके की शादी की। वह भी शादी के तुरन्त बाद अलग हो गया। यानी [illegible] यह आत्माराम भूल-भुलैया के जाल मे ऐसा फसा हुआ है कि [illegible] रहा है। अरे भाई, [illegible] योनियों [illegible] मे [illegible]

हो सकता है। अन्यथा दूसरी गतियों या योनियों में इस जाल से अलग होने का कोई उपाय नहीं है। इस मानव भव को पाकर के भी तू कैसे निकल सकता है? ये चाबियां भगवान की वाणी में हैं। यदि हम उन चाबियों को प्राप्त कर ठीक रीति से ताले को खोलें, तो ताला खुलने में कोई देर नहीं लगेगी। और फिर ठीक रास्ता मिल जायगा। वे चाबियां वर्तमान में गुरुओं के पास हैं और वे ही तेरे भव-बन्धन के ताले खोलने में समर्थ हैं। इसलिए क्या करें?

सुगुरु संग धार, धार, रे धार, कुगुरु संग टार, टार, रे टार ॥
सुगुरु है सुर-तरु-सा जग में, आत्म-रस भरा जो रग-रग में।
सुगुरु है सहायक शिव-मग में, ज्ञान-गुण शोभित है नग में ॥
जन्म जरा मृत्यु सभी, महादुखों की खान।
उनसे अलगा जब हुए सरे, धरे सुगुरु को ध्यान ॥
हृदय से परख सार तू सार, सुगुरु संग धार, धार, रे धार ॥

वे जिनागम की चाबियां सुगुरु के पास हैं। उनकी शरण लेना। परन्तु गुरु कौन? मैं फलानचन्द जी का चेला हूं, मैं अमुक सम्प्रदाय का हूं, मैं आपके पन्थ का हूं, मैं अमुक के गच्छ का हूं। भाई, क्या उन-उन सम्प्रदाय, गच्छ, पन्थ या समाज के गुरु हाथ पकड़ कर तुझे मोक्ष में पहुंचा देंगे? नहीं? अरे, सच्चा गुरु तो वही है जिसके द्वारा हमारे हृदय का परिवर्तन हो जाय। हमारे हृदय में [illegible] ज्योति जल जाय और यह भान हो जाय कि मैं अभी तक गलत रास्ते पर था। [illegible]

भाइयो, आप लोग भी तो बहुत सयाने है। आप भी अपने बडे लडके को तिजोरी की चाबी तभी देते है, जब आपका उस पर पूर्ण रूप से विश्वास हो जाता है। कोई भी बिना सोचे-समझे नही दे देता है। इसी प्रकार जब गुरु महाराज के हृदय मे शिष्य के प्रति शत-प्रतिशत विश्वास जम जाता है, तभी वे जिनागमो की चाबिया उसे देते है। अन्यथा वे भी नही देते है। क्योकि अयोग्य और अविनीत शिष्य को आगम की चाबिया देने पर कभी-कभी भारी नुकसान और बिगाड की सम्भावना रहती है। शिष्य कैसा होना चाहिए ? इसके विषय मे आचार्य कहते है कि—

गुरुभक्तो भवाद्भीतो विनीतो धार्मिक. सुधी ।
शान्तस्वान्तो ह्यतन्द्रालु शिष्ट. शिष्योऽयमिष्यते ॥

जो गुरु का भक्त हो, गुरु पर परम श्रद्धा रखने वाला हो, ससार से भयभीत हो, विनीत हो, जिसके अहकार का लेश भी न हो, धर्मात्मा हो, बुद्धिमान् हो, शान्त-चित्त हो, आलस्य और प्रमाद से रहित हो और शिष्ट हो अर्थात् गुरु के अनुशासन मे चलने वाला सभ्य हो, वही योग्य शिष्य कहा जाता है। उक्त गुणो मे से किसी भी गुण मे कमी होने पर गुरु उस पर शास्त्रो का रहस्य प्रकट नही करते है।

हा, तो मै कह रहा था कि मनुष्य के हृदय मे भावो की परिणतिया नित्य बदलती रहती है। इन बदलने वाली वृत्तियो का बदलना बन्द करो और उन्हे एक रूप मे रखो— ऐसी एक प्रवृत्ति बना लो। यहा पर कोई कहे—महाराज, भाई कसाई है, शिकारी है, जुआरी है, वेश्यागामी है अथवा चोर है। और वह [illegible] कि मन तो अपना एक प्रवृत्ति करता है। मैने जिस काम का पकड़ लिया है [illegible] आता नही है। [illegible] गुरुदेव, आप कहते है कि एक [illegible] एक प्रवृत्ति [illegible] [illegible]

होकर के ही रहता है। जब जाति के लोगों को पता लगा कि आजकल अमुक सेठजी की दशा कमजोर हो गई है, तब जाति के कुछ प्रमुख व्यक्ति उनके यहा गये। पहिले के समय मे जो समाज के मुखिया, पच और चौधरी होते थे, वे समय-समय पर जाति के सब लोगो को सम्भालते रहते थे कि किस की कैसी हालत है? जिन्हे वे गिरती हालत मे देखते-उन्हे उठाने का प्रयत्न करते और सर्व प्रकार से उनका स्थितीकरण करते और तन-मन-धन से सहायता देकर अपना वात्सल्य-भाव प्रकट करते थे। तभी वे जाति के मुखिया और सर-पच माने जाते थे। परन्तु जिन्हे जाति की कोई चिन्ता नही है, भले ही वे कितने ही धनी क्यो न हो, पर सरदार, मुखिया या बडे आदमी कहलाने के योग्य नही है। ये तो केवल अपना पेट भरने वाले उदर-पाल है। ऐसे लोगो के लिए कवि कहते है—

> लियो नहि जस वास जगत मे, तू तो 'जसा' कहा आय कियो है,
> मानुष रूप भयो मृग-सावक, पेट भर्यो भुवि भार दियो है।
> लोकनि मे पत जाको नहीं, अधियारथता को जन्म जियो है,
> मात को जोबन घात कियो, कछु जातो न सम्बल साथ लियो है॥

यदि ऐसे पृथ्वी के भार और माता के यौवन-हारक लोग कभी किसी के घर पहुच भी जावे, तो भी वे क्या सरदारगिरी करने के योग्य है। अरे, ऐसे लोग तो सरदार नही, किन्तु मुर्दार है।

हा, तो कुछ सज्जन सब जाति के प्रमुख लोग उन सेठजी के घर गये। उन सरदारों को घर पर आया हुआ देखकर वह सेठ उठा और चार-छह कदम आगे आकर उसने अभिवादन किया और आदर-सम्मान के साथ गादी पर बैठाया। [illegible] सरदारों ने पूछा— सेठ साहब, आपकी तबियत तो ठीक है? [illegible] सब महानुभावों की कृपा से सब ठीक है। फिर [illegible] ठीक है [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] आप सरदार

घर वार अटारी चौपारी, क्या खासा ननसुख और मलमल।
क्या चिलमन पर्दे फर्श नये, क्या लाल पलग और रगमहल।
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ३ ॥

हर मंजिल मे अब साथ तेरे, यह जितना डेरा डाडा है?
जर[1] दाम दिरन का झडा है, बन्दूक सिपाह[2] और खाडा है?
जब नायक तन से निकलेगा, जो मुल्को-मुल्को हाडा है।
फिर हाडा है न भाडा है, न हलवा है न भाडा है॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ४ ॥

कुछ काम न आवेगा तेरे यह लाल[3] जमुर्रद सीमोजर[4]।
सब पूंजी बाट मे बिखरेगी, जब आन बनेगी जां ऊपर॥
नौबत नक्कारे बान निशा[5] दौलत हशमत[6] फौजें लश्कर।
क्या मसनद तकिया मुल्क मका, क्या चौकी कुरसी तख्त छतर॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ५ ॥

क्यो जी पर बोझ उठाता है, इन गोनो भारी-भारी के,
जब मौत लुटेरा आन पडा, तब दूने है बैपारी के।
क्या साज जडाऊ जड जेवर, क्या गोटे थान किनारी के,
क्या घोडे जीन सुनहरी के, क्या हाथी लाल अभारी के॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ६ ॥

मगरूर[1] न हो तलवारो पर, मत भूल भरोसे ढालो के।
सब पडा तोड के भागेगे, मुह देख अजल के भालो के॥
क्या डिब्बे मोती हीरो के, क्या ढेर खजाने मालो के।
क्या बुकचे ताश मुशज्जर[2] के, क्या तख्ते शाल दुशालो के॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ७ ॥

[illegible]
[illegible]

आसू पोछे और कहने लगे—सेठ साहब, घबराये नही। ये दिन भी चले जायेगे। जब वे दिन भी नही रहे, तब ये दिन कैसे रहेगे। हम लोग आपको पूजी के लिए रकम देते है, उससे आप व्यापार कीजिए। ऐसे ही घर मे बैठ रहने से घर-गृहस्थी का काम कैसे चलेगा ?

तब वह सेठ बोला—भाई साहबान, आप सब सरदारो का कहना ठीक है। परन्तु अभी मेरे दिन-मान ठीक नही हैं। उसने हाथ जोडकर सब सरदारो से कहा—आप लोग समाज के सिरमौर है और मुझे ऊचा उठाना चाहते है, यह आप लोगो का बडप्पन है। परन्तु मुझे अभी अपने ऊचे उठने के दिन नही दिखते है। आप लोगों का भार भी मेरे सिर पर हो जाय और फिर भी मैं दबता जाऊ ? इससे अच्छा तो इसी दशा मे रहना ठीक है। सेठ की यह बात सुनकर सरदारो ने कहा—आप इतना आगे मत बढ़ो। परन्तु आपके घर का जितना खर्चा हो, वह तो बताइये। सेठ बोला—घर का खर्चा तो जिस किसी प्रकार मे चला ही लेता हू। इसकी आप लोग कुछ चिन्ता न करे।

उन पच-सरदारो ने देखा कि यह भी कितना स्वाभिमानी व्यक्ति है कि किसी से किसी भी प्रकार की सहायता लेना ही नही चाहता। अब इसकी सहायता करे तो कैसे करे ? यह तो हर बात मे इनकार करता ही जा रहा है। कुछ देर उन लोगो ने परस्पर मे विचार-विनिमय करके कहा—सेठ साहब, आपके लडके को हम लोग ले जाना चाहते है। हम इसे पढा-लिखाकर और होशियार बनाके अपने पैरो पर खडा करेंगे। सेठने उन लोगो के अति आग्रह पर यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वे लोग उसके लडके को अपने साथ ले गए। उसके पढ़ने-लिखने की समुचित व्यवस्था कर दी और सरपच ने उसे अपना [illegible] लिया। [illegible] भी कुछ समय मे पढ लिखकर होशियार हो गया। [illegible] विचार किया कि घर का जोगी जोगना, [illegible] सिद्ध। घर का जोगी, मन्त्रवादी या वैद्य आदि होता है तो [illegible] सामने मेरा [illegible] परन्तु यदि कोई [illegible] है, [illegible] सिद्ध-पुरुष मानने

गादी के नीचे रख दिया और कोई उत्तर नही दिया। अरे, जिसे जवाब ही नही देना है, वह क्या उस पर विचार करेगा? नही करेगा।

इस प्रकार लडके को सेठिया के घर रहते और सेठ बनकर मौज करते हुए कई वर्ष बीत गये। इधर उसका बाप बुड्ढा हो गया। फिर भी मेहनत-मजदूरी करके किसी प्रकार अपना गुजारा करता रहा। समय-समय पर पच लोग उसके पास आते रहे और सहायता लेने के लिए आग्रह भी करते रहे। परन्तु उसने किसी का भी एहसान लेना उचित नही समझा और जिस किसी प्रकार से अपने दिन काटता रहा। वह सदा एक बात अपनी पत्नी से अवश्य कहा करता कि मैने जीवन मे कभी कोई काला धब्बा नही लगाया और न कभी किसी का एहसान ही सिर पर लिया है। परन्तु पचो का एहसान मेरे ऊपर रह गया है। क्योकि उन्होंने लडके को पढाया लिखाया, उसका सारा खर्चा वहन किया और होशियार करके दिसावर भी भेज दिया। यह एहसान मेरे ऊपर अवश्य है। क्योकि लडका तो मेरा ही है। यदि यह उन लोगो का एहसान उतर जाता, तो फिर मै निराकुल हो जाता और शान्ति से मेरा मरण होता। परन्तु लडका तो परदेश मे जाकर पराया ही हो गया। वह तो वहा के सुख मे ऐसा मगन हुआ है कि अपने लोगो को और गाव के पचो तक के एहसान को भी भूल गया है।

कुछ दिनो के पश्चात् गाव के सरदार लोग फिर उसके यहा आये। उन्होने कहा—सेठजी, आपके लडके को तो अब किसी की परवाह नही रही। [illegible] हम लोगो का विचार है कि आप एक बार स्वयं वहा पधारे। सामने [illegible] जायगी ही। और आप भी [illegible] यह खुशहाली मे है, अथवा [illegible] परिस्थिति मे फसा हुआ है। सेठ ने उन लोगो का कहना [illegible] उसने यह कहा [illegible] [illegible] नही हू।

[illegible]

[illegible]

की आवश्यकता ही नही है। परन्तु अभी आप लोग पराये घर मे है और मोरिये मल्हार गा रहे, तभी अपना घर भूले हुए है।

जब सेठ ने देखा कि मुझे देखते ही लडके ने अपना मुख फेर लिया तो वह समझ गया कि इसे मुझसे मिलने मे शर्म आ रही है। परन्तु मुझे तो मिलने मे शर्म नही आनी चाहिए। आखिर यह बेटा तो मेरा ही है। मुझे किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नही है। मै चलकर गादी पर बैठता हू। देखता हू कि मुझे बैठने मे कौन रोकता है? ऐसा विचार कर वह सेठ नि सकोच-भाव से सीढिया चढा और पैरो व कपडो की धूल झटकारे बिना ही उज्ज्वल चादनी वाली गादी पर जा बैठा। यह लडका मन-ही-मन बडा लज्जित हुआ और सोचने लगा कि आज तो इसने मेरी सारी इज्जत धूल मे ही मिला दी और सारा गुड ही गोबर कर दिया। लज्जा के मारे लडके ने सिर भी ऊपर नही किया। सेठ सोचने लगा कि मै इसकी छाती पर भी आकर के बैठ गया हू। मगर फिर भी इसे अभी तक शर्म नही आ रही है और मेरे से बोल तक भी नही रहा है। यह देख सेठ का पारा चढ गया और आखो मे खून उतर आया। वह लडके की ओर घूर-घूर कर देखने लगा।

गादी पर ऐसे धूलि-धूसरित और शरीर से जर्जरित पुरुष को आकर बैठता हुआ देखकर मुनीम, गुमाश्ते आदि सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गये। वे सोचने लगे कि यह कौन है, जिसने किसी से कुछ पूछा तक भी नही और ऐसे ही [illegible] पैरो से आकर गादी पर हमारे मालिक के पास आ बैठा है? परन्तु [illegible] देखकर किसी का भी इससे कुछ पूछने की [illegible] नही हुई। प्रधान मुनीम ने इस बात पर [illegible] से विचार किया कि [illegible] आकर बैठा है [illegible] आकर बैठ जायगा। [illegible] इस व्यक्ति ने [illegible] पूछना [illegible] प्रधान मुनीमजी [illegible] स्थान से उठकर [illegible] क्या नाम है और [illegible]?

[illegible]

[illegible]

कर तो यहा बैठा है। परन्तु जिन लोगो ने तुझे पढा-लिखाकर होशियार किया और कमाने के लिए यहा भेजा—उनकी रकम तो तुझे वापिस भेजनी चाहिए थी ? जब तुझ अपने मा-बाप से मतलब नही है, तब ऐसे बेटे से हमे भी कोई मतलब नही है। हम तो किसी न किसी प्रकार से अपना निर्वाह कर ही रहे है और जाति के सरदार लोग बहुत अच्छे है, सो सब काम चल ही जायगा। मगर तेरे ऊपर जो उन लोगो का ऋणभार है, उसे तो तुझे उतारना चाहिए था। और उसी के लिए मैं इस अशक्त-अवस्था मे तुझसे कहने के लिए आया हू। अन्यथा मुझे तेरी और तेरे धन की कोई आवश्यकता नही है।

बस, इतना कहकर वह सेठ उसकी पेढी से नीचे उतरकर घर को वापिस चल दिये। अब लडके को होश आया और पर-घर से निज-घर मे आगया। अपने दुष्कृत्यो का पश्चात्ताप करने लगा—हा, इन चादी के चद टुकडो की चकाचौंध मे मै पागल हो गया—पर-घर मे कितना विमोहित हो गया कि अपने घर के और घरवालो को ही भूल गया। हाय, जिन्होने मेरे ऊपर इतने उपकार किये है, मैने उन्हे ही बिसार दिया! ऐसा मन मे पश्चात्ताप करता हुआ वह पिता के सामने पहुँचा, उनके पैर पकडे और अपनी भूलो के लिए क्षमा मागी। तथा भविष्य मे ऐसी भूल नही करने के लिए प्रतिज्ञा की, और वापिस लौटने के लिए कहा।

पिता ने कहा—अब मुझे तेरी आवश्यकता नही है। जब तू अपने घर को ही भूल गया, तब औरो की क्या बात है! लडके ने बहुत अनुनय-विनय करके पिता को प्रसन्न किया और कहा—मै यह सब पर-घर-धाम छोडकर आपके साथ चलता हू। तब पिता का चित्त शान्त हुआ। वह उस सेठिये का सब [illegible] आकर और अपनी स्त्री को साथ लेकर पिता के साथ घर को [illegible] गया, तब उस सेठिया ने इसका और इसके पिता का समुचित आदर-[illegible] क्षमा याचना की। मार्ग के लिए समुचित [illegible] दिया [illegible] और [illegible] को साथ मे लेकर घर [illegible] [illegible] आनन्द [illegible] [illegible] सुख से रहने लगा।

ये साधुसन्त आपको चेता रहे है कि हे जगज्जीवो, अब भी चेतो, अपनी आखें खोलो और इस मोह-निद्रा को छोडो। अपने घर मे चलो और अपना कार्य-भार सभालो। इस पर घर के कार्य भार को तिलाञ्जलि दो। फिर चौरासी के चक्कर से सदा के लिए छुटकारा मिल जायगा।

हम यदि अपनी प्रवृत्तियो की ओर ध्यान देगे, अपनी इधर-उधर दौडती प्रकृति को सम्भालेगे और समभावी बनकर एक स्थिर शुद्ध प्रकृति मे अवस्थित होगे तो हम ससार से मुक्त हो जायेगे। इसलिए अपनी शुद्ध प्रकृति मे रहने की आवश्यकता है।

वि० स० २०२७ भादवा सुदि १३
सिंहपोल, जोधपुर,

●●

बिना कारण के कोई इस प्रकार के अपमान-कारक वचन नहीं कह सकता है? तब विचार करने पर ज्ञात होगा कि मैं उन कर्मों के संग में पड़कर अपने आत्म-स्वरूप को भूल गया हूं। अब मुझे सर्व प्रथम आत्म-स्वरूप का जानना आवश्यक है। बिना आत्म-स्वरूप के मनुष्य की प्रवृत्ति बहकाये गये आदमी जैसी होती है। जैसे किसी व्यक्ति ने किसी से कह दिया—देख, तू अमुक स्थान पर जाता तो है, परन्तु सावधान रहना। क्योंकि वहां चुड़ैलन रहती है। मैंने उसे वहां पर देखी है और उसे देखते ही एक आदमी मर भी गया है। अब वहम हो जाने के कारण पहिले तो वह वहां जायगा ही नहीं। यदि भूल से कभी चला भी गया और वहां पर किसी भली स्त्री को काम करते हुए देखा, तो उसे देखते ही वह चुड़ैलन समझ कर वहम के कारण गिर गया और बेहोश हो गया। उसके समझने की शक्ति नष्ट हो गई।

इसी प्रकार किसी ने व्यापार किया। व्यापारी यह जानता है कि नफा और टोटा तो भाई-भाई हैं। आप लोग कहते तो हैं, परन्तु समझते कहां हैं? जब नफा होता है, तब तो गाल फुला लेते हैं और जब टोटा होता है, तब चिन्ता करने लगते हैं। जब क्यों कहता है कि अच्छा लगा नुकसान? अरे, घाटे को क्यों नहीं लेता है? और क्यों कहता है कि मैं तो नफा लूंगा? आप लोग व्यापार करते हुए एक दूसरे को गिराना चाहते हैं। इसी प्रकार व्यापार करते हुए यदि नुकसान अधिक हो जाता है, तब कहता है कि मैं उसे भुगत नहीं सकता। वह वहम में पड़ गया। अतः मालामाल होते हुए भी वह घाटे को पूरा नहीं कर सकेगा। किन्तु दूसरा व्यापारी जो पक्की छाती वाला है, उसने भी [illegible] था। उसके पास कुछ भी पूंजी नहीं थी, परन्तु हिम्मत के साथ व्यापार किया और धन कमाया, स्त्री के आभूषण बनवाये और दीगर घर-बार भी [illegible]। अब व्यापार करते हुए [illegible] घाटा भी पड़ गया, तब [illegible] है? [illegible] घाटे को पूरा कर देगा। यदि [illegible] है— भाई साहब, [illegible] [illegible], यह आप [illegible]। इस प्रकार [illegible]।

आये ही नही। जिनके कानो मे भगवान की वाणी ही नही पडी, कभी साधु-पना और श्रावकपना ही नही लिया। ऐसे ऐसे भी जीव अन्तर्मुहूर्त मे समकित पाकर और साधु बनकर मोक्ष को चले गये। भाई, जीवो के परिणामो की गति बडी विचित्र है। अध्यात्म पदकार प० भागचन्द कहते है—

जीवन के परिणामनि की यह अतिविचित्रता देखहु ज्ञानी ॥टेर॥

नित्य निगोद माहितें कढकर, नर पर्याय पाय सुखदानी।
समकित लहि अन्तर्मुहूर्त में, केवल पाय वरे शिवरानी ॥जीवन०१॥
मुनि एकादश गुणस्थान चढि, गिरत तहा तें चितभ्रम ठानी।
भ्रमत अर्धपुद्गल परिवर्तन, किंचित् ऊन काल पर मानी ॥जीवन०२॥
निज परिणामनि की समाल मे, तातें गाफिल मत ह्वै प्रानी।
बन्ध मोक्ष परिणामनि ही तें, कहत सदा श्री जिनवर वानी ॥जीवन०३॥
सकल उपाधि-निमित भावनसों, भिन्न सु निज परिणति को छानी।
ताहि जानि रुचि ठानि होउ थिर, भागचन्द यह सीख सयानी ॥जीवन०४॥

भाइयो, जीवो के परिणामो की विचित्र गति है। जिनका ससार-परिभ्रमण अभी शेष है, वे यदि सुयोग से सम्यक्त्व प्राप्त कर और सयम को धारण करके उपशम श्रेणी पर भी चढ जावे—तो वहा से मोह कर्म के उदय आते ही नीचे गिरते है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक ससार मे मिथ्यात्वी बनकर घूमते रहते है। किन्तु जिनकी काल-लब्धि पक जाती है ऐसी अव्यवहार राशि के नित्य निगोदिया जीव वहा से निकलकर सीधे मनुष्य होते हैं और जीवन के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे ही सम्यक्त्व और सयम को धारण करके घातिया कर्मों का क्षय करते हुए अन्तःकृत्केवली बनकर अन्तिम समय मे अघातिया कर्मों का भी क्षय कर मुक्ति को प्राप्त कर लेते है। ऐसे जीवो को कभी जिनेन्द्र भगवान के वचनों के सुनने का अवसर ही नही आया। उनके [illegible] पद शास्त्रो मे दिया गया है। कहने का सार यह है कि [illegible] आने कर्मों के काटने के लिए बहुत [illegible] है। किन्तु [illegible]

बात है। इसी प्रकार आत्म-स्वरूप को देखो, चाहे अपने घर को देखो। मार्ग तो एक ही है। परन्तु उसमे व्यवधान है। मार्ग मे ऐसी-ऐसी बडी विकट चट्टाने पडी है कि उसमे जाने पर बडे-बडे शूर वीर भी लडखडा जाते है। लक्ष्मणा नाम की साध्वी-जो ससार से मुक्त होने वाली ही थी कि उसने एक चिडा-चिडी को विषयरत देखा तो मोहासक्त होकर लाख भव बढा लिये। हमारे हृदय मे कितनी-कितनी कल्पनाए पैदा होती है कि जिनकी कोई सीमा नही है। और जब हम उनमे भटक जाते है, तब उनमे से निकलना कठिन हो जाता है।

एक ब्राह्मण तीर्थयात्रा को गया। वापिस लौटते समय उसके पास खर्चा नही रहा। भाई, साधु और ब्राह्मण ये दोनो तो पर-घर पर आश्रित है। उसने सोचा—मेरे हाथ मे तो यह सोने का खप्पर है। कही भी जाऊगा तो उदर-पूर्ति के लिए ले आऊगा। वह बाजार मे एक दुकान पर गया और सेठ से कहा—'मै भूखा हू।' यदि पेटिया (सीधा) मिल जाय, तो भोजन कर लू। उसने कहा—भाई, हम तो सदा ही देते है, सो तुम्हे भी देगे। परन्तु पहिले तुम उस सामने वाली हवेली से ले आओ। उसके बाद ही हम तुम्हे देगे। ब्राह्मण ने पूछा—भाई, वह देता भी है, या नही? सेठ बोला—आज तक तो उसने किसी को दिया नही है। यदि तुम ले आओ—तब जानू? ब्राह्मण बोला—अच्छा ऐसी बात है। देखो—मै अभी लाता हू। यदि वहा से ले आया तो तुम्हे भी देना पडेगा। सेठ ने यह बात मजूर कर ली।

अब वह ब्राह्मण सामने वाले सेठ के पास पहुचा। सेठजी गादी पर विराजमान थे। इसने जाते ही उन्हे आशीर्वाद दिया। सेठ ने पूछा—यहा कैसे आये? ब्राह्मण बोला—सेठजी, मै द्वारकाधीश और जगन्नाथपुरी की यात्रा के लिए गया था। वहा से वापिस लौट-रहा हू। मेरे पास घर तक पहुचने के लिए खर्चा नही रहा है और भूख भी लग रही है। अब मुझे पेटिया दिलाने की कृपा करे, ताकि मै भोजन कर लू और दक्षिणा भी दिलावे, जिससे रास्ते [illegible]। यह सुनकर सेठ ने कहा—ब्राह्मण देवता, आप पुरी जा [illegible] और [illegible] आ रहे है, [illegible] पेटिया लेने की तो कोई बात [illegible]। [illegible] कि आप वास्तव मे पुरी को

तब कुछ लोग बोले—यह ब्राह्मण झूठ बोलता है। यह स्त्री तो सेठजी की है। यह सुनकर ब्राह्मण बोला—आप लोग तो सेठजी जैसी ही कहेंगे? परन्तु मेरी बात सुन लो—यदि यह सेठजी की स्त्री है तो ये बतावें कि स्त्री ने हाथ में कितनी चूड़िया पहिन रखी है? यदि न बता सके तो स्त्री इनकी नहीं, मेरी है? तब लोगों ने कहा—अच्छा सेठजी, बताइये कि इस स्त्री ने हाथ में कितनी चूड़िया पहिन रखी है? अब सेठजी ने चूड़िया गिनी होवें तो बतावें? सेठजी कुछ भी नहीं बोल सके।

तब उस ब्राह्मण ने लोगों से कहा—देखो साहब, मेरी एक बात सुनो। मैं यहां आया हूं पेटिये के लिए। मैंने सेठजी से कहा कि मैं जगन्नाथपुरी के दर्शन करके आरहा हूं। मेरा खर्चा समाप्त हो गया है और भूखा भी हूं। अतः पेटिया दिलाने की कृपा करा दें। परन्तु सेठ साहब कहने लगे—मुझे तुम्हारी यात्रा का तब विश्वास हो जब तुम यह बताओ कि जगन्नाथपुरी के मन्दिर की सीढ़िया कितनी है? अब आप लोग ही बतावें कि क्या मैं वहां सीढ़िया गिनने गया था, या भगवान के दर्शन करने के लिए गया था? इसी से मैंने भी सेठजी से पूछा है कि यदि वास्तव में यह तुम्हारी स्त्री है तो बताइये कि इसके हाथ में कितनी चूड़िया है?

ब्राह्मण की बात सुनकर सब लोग हंसने लगे और सेठजी से बोले—सेठ साहब, अब तो इसे [illegible] में ही सार है। इसे पेटिया दो और यहां से विदा करो। सेठ ने [illegible] होते हुए इसे भरपूर पेटिया दिया साथ में एक मोहर भी दक्षिणा में दी। ब्राह्मण ने जाते हुए कहा—सेठ साहब! आप कह रहे थे मैं पेटिया नहीं दूंगा। परन्तु मैं आपके ही हाथ से लेकर जा रहा हूं।

[illegible] सामने [illegible] पहुंचा और आशीर्वाद [illegible] पेटिया [illegible] हूं। अब आप [illegible] उस पेटिया और दक्षिणा देकर [illegible]।

[illegible]

कगाल हो गया। परन्तु "अव पछताये होत क्या जव चिडिया चुग गई खेत।" अव तो पछताना ही शेष रह गया है।

इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा ससार मे आई। इस देह को पाकर महान् अनर्थ और आरम्भ के काम किये, काला वाजार किया और देश, जाति एव धर्म को लजाया। ऐसे कुकर्म करने वाला व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को नही पहिचान सकता है। और जव तक कोई आत्म स्वरूप को नही पहिचानेगा, तव तक अपनी अभीष्ट मजिल पर भी नही पहुच सकता है। इसलिए भाइयो, आत्म-स्वरूप को पहिचानने का प्रयत्न करो।

वि० स० २०२७, भादवा सुदि १४
सिहपोल, जोधपुर।

●●

की तो कहे कौन, आगे उनके भवो तक बना रहता है। जब तक वह अपने वैरी से बदला नही ले लेगा, तब तक बना ही रहेगा।

अनन्तानुबन्धी मान वज्र के स्तम्भ के समान है। जैसे वज्र सबसे अधिक कठोर होता है, इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान वाले का हृदय अत्यन्त कठोर होता है। उसके हृदय मे नम्रता कभी सभव ही नही है। अनन्तानुबन्धी माया बास की मूल के समान अत्यन्त कुटिलता वाली है। उसमे सरलता का नाम नही होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी माया वाले पुरुष मे सरलता का नाम नही होता है। वह तो कुटिलता का भडार होता है, अनन्तानुबन्धी लोभ किरमिची रग के समान होता है, जो कि एक बार कपडे पर चढ जाने के बाद भट्टियो मे चढाये जाने पर भी उतरता नही है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी लोभ अत्यन्त प्रबल होता है। वह कभी छूटने का नाम नही लेता है। जब तक इस आत्मा के ऊपर इन अनन्तानुबन्धी चारो कषायो का सम्बन्ध बना हुआ है, तब तक आत्मा मे शुभ, स्वच्छ या निर्मल भाव कैसे आ सकते है? जब अनन्तानुबन्धी कषाय की यह चण्डाल-चौकडी दूर होती है, तभी आत्मा मे विशुद्ध परिणामो की धारा प्रवाहित हो सकती है। अन्यथा नही।

जैसे किसी व्यक्ति के शरीर के रोम-रोम मे रोग व्याप्त हो रहा है। और वह वेदना की तीव्रता से छटपटा रहा है। उस समय यदि कोई कहे कि तू एकाध रोटी खाले, या जरा सी खिचडी आदि खाले तब वह कहता है—अरे, क्या माथा पच्ची कर रहे हो! देखते नही, मुझे कितनी वेदना हो रही है। जब मुझे तुम्हारा बोलना भी नही सुहाता है, तब खाना कैसे अच्छा लग सकता है? मुझे किसी भी वस्तु के खाने या पीने की रुचि नही है। उसके हितैषी लोग कहते है—अरे, थोडा सा हमारे ही कहने से खाले। देख, खाने से शक्ति आ जायगी। परन्तु वह कहता है कि मैने एक बार कह दिया न? मै नही खाऊगा। फिर बार-बार मुझे क्यो तग कर रहे हो? मै किसी भी प्रकार नही खाऊगा।

भाइयो [illegible] वस्तु के खाने से शरीर का पोषण होना और शक्ति [illegible] उसको खाना [illegible]

की तो कहे कौन, आगे उनके भवो तक वना रहता है। जब तक वह अपने वैरी से वदला नही ले लेगा, तब तक वना ही रहेगा।

अनन्तानुवन्धी मान वज्र के स्तम्भ के समान है। जैसे वज्र सवसे अधिक कठोर होता है, इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी मान वाले का हृदय अत्यन्त कठोर होता है। उसके हृदय मे नम्रता कभी सभव ही नही है। अनन्तानुवन्धी माया वास की मूल के समान अत्यन्त कुटिलता वाली है। उसमे सरलता का नाम नही होता है। इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी माया वाले पुरुष मे सरलता का नाम नही होता है। वह तो कुटिलता का भडार होता है, अनन्तानुवन्धी लोभ किरमिची रग के समान होता है, जो कि एक वार कपडे पर चढ जाने के वाद भट्टियो मे चढाये जाने पर भी उतरता नही है। इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी लोभ अत्यन्त प्रवल होता है। वह कभी छूटने का नाम नही लेता है। जब तक इस आत्मा के ऊपर इन अनन्तानुवन्धी चारो कषायो का सम्वन्ध वना हुआ है, तव तक आत्मा मे शुभ, स्वच्छ या निर्मल भाव कैसे आ सकते है? जव अनन्तानुवन्धी कषाय की यह चण्डाल-चौकडी दूर होती है, तभी आत्मा मे विशुद्ध परिणामो की धारा प्रवाहित हो सकती है। अन्यथा नही।

जैसे किसी व्यक्ति के शरीर के रोम-रोम मे रोग व्याप्त हो रहा है। और वह वेदना की तीव्रता से छटपटा रहा है। उस समय यदि कोई कहे कि तू एकाध रोटी खाले, या जरा सी खिचडी आदि खाले तव वह कहता है—अरे, क्या माथा पच्ची कर रहे हो। देखते नही, मुझे कितनी वेदना हो रही है। जब मुझे तुम्हारा बोलना भी नही सुहाता है, तब खाना कैसे अच्छा लग सकता है? मुझे किसी भी वस्तु के खाने या पीने की रुचि नही है। उसके हितैषी लोग कहते है—अरे, थोडा सा हमारे ही कहने से खाले। देख, खाने से शक्ति आ जायगी। परन्तु वह कहता है कि मैने एक बार कह दिया न? मै नही खाऊँगा। फिर बार-बार मुझे क्यो तग कर रहे हो? मै किसी भी प्रकार नही खाऊँगा।

भाइयो! इसी—जिस वस्तु के खाने से शरीर का पोषण होना और शक्ति [illegible] वस्तु से [illegible] अरुचि हो गई कि वह उसकी ओर देखना

मान के हाथी पर चढा हुआ व्यक्ति अपने अभिमान के पीछे अपना घर तक फूक देता है। अपनी सम्पत्ति को स्वाहा कर देता है। यदि उस समय कोई उससे कहे—भाई, अभिमान के पीछे अपने घर का क्यो सत्यानाश कर रहा है, तो वह कहता है—तुम मेरे बीच मे बोलने वाले कौन होते हो ? मुझे जो जचेगा, वही करूगा। इस प्रकार अभिमानी को अपने भले-बुरे का कुछ भी विवेक नही रहता है। कहा भी है—

यो मदान्धो न जानाति हिताहित विवेचनम् ।
स पूज्येषु मद कृत्वा श्वान-गर्दभवद् भवेत् ॥

मान-मद से अन्धा हुआ पुरुष, अपने हित और अहित के विवेक को कुछ भी नही जानता है। वह अपने पूज्य पुरुषो पर भी अहकार करके कुत्ते और गधे के समान बन जाता है।

मायाचारी मनुष्य मायाचार करके समझता है कि मै बहुत चतुर हू और दूसरो को चकमा देकर उन्हे मूर्ख बनाया करता हू। किन्तु उस मूर्ख को यह पता नही कि यह मायाचार एक दिन प्रकट होगा और सब लोग मुझे अपमानित करेंगे। शास्त्रकार कहते है—

माया करोति यो मूढ इन्द्रियार्थ निषेवणे ।
गुप्त पाप स्वय तस्य व्यक्त भवति कुष्टवत् ॥

जो मूढ पुरुष इन्द्रियो के विषय-सेवन करने के लिए मायाचार करता है, उसका वह गुप्त पाप स्वय कोढ के समान व्यक्त होगा और सर्वत्र निन्दा और ग्लानि को प्राप्त होगा।

जो लोभ से अन्धा बन जाता है, वह किसी भी पाप के करने से नही डरता है। लोभ को सब पापो का बाप कहा गया है। लोभ के कारण ही यह मनुष्य दूसरो का गला काटता है और उनका धन-हरण करता है। शास्त्रकार कहते है—

लोभाकुलेन [illegible] महोन्मत्ता सर्वस्व परिभक्षणक्षम: ।
[illegible] नरकं च निर्घृणा मानव यान्ति घोरघोरतम् ॥

वताओ—पहिले ऐसा कहने वालो ने पीछे उसके यहा क्यो खाया ? इसका विश्लेपण करने पर ज्ञान होगा कि उस मनुष्य ने वास्तव मे वैसा नही कहा है। किन्तु उसके भीतर उत्पन्न हुए क्रोध ने वैसा कहा है। क्रोध के समय उसका दिमाग ठिकाने नही था। उस समय वह क्रोध मे अन्धा हो रहा था। उस पर क्रोध का भूत सवार था। जिसके आवेश मे वह वैसा कह गया।

इसी प्रकार क्रोध के आवेश मे मनुष्य कह देता है कि मै तेरे घर पर कभी नही आऊगा। यदि तेरे घर पर आऊ तो भगी के घर जाऊ ? परन्तु क्रोध शान्त होने पर वह उसके घर जाता है, या नही ? जाता है। ऐसा कहना क्रोध की परवशता का फल है। इसी प्रकार मान आदि कपायो के उदय होने पर मनुष्य यद्वा-तद्वा वकने लगता है। परन्तु जव स्वभाव मे आता है, तव सव वाते शान्त हो जाती है।

यहाँ कोई पूछे कि सामायिक, पौपध, साधुपना और श्रावकपना क्या अव्रत मे है ? इसका उत्तर है कि ये सव अव्रत मे नही है। ये सव वाते तो वहुत ऊची श्रेणी की है। यदि ये सव वाते वहुत ऊची श्रेणी की है तो महाराज, आप कैसे कहते है कि जव अनन्तानुवन्धी कपाय मन्द हो और दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम या क्षयोपशम आदि हो, तव सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इसका उत्तर यह है कि जो उक्त कर्मों का क्षयोपशमादिक हो जाय, तो जीव के तत्त्वो का गाढ श्रद्धान हो जाता है, उसके हृदय मे देव-गुरु-धर्म पर गाढ प्रेम हो जाता है, उसकी रग-रग मे श्रद्धा रम जाती है, जो कभी नही छूटती है। जैसे फूलो मे से इत्र निकाल लिया। अब जो फूला शेष रहा है, उसे सूघो तो उसमे से भी सुगन्ध आती है, या नही ? गुलाब के फूलो मे से इत्र निकाल लिया। फिर भी उस फूल की भट्टी लगाकर उसमे से अर्क निकालते है, जो गुलाबजल कहलाता है। भाई, सुगन्धपना गुलाब का जन्मजात गुण है। अत वह उसमे बना रहता ही।

इसी प्रकार [illegible] पर उसके हृदय मे भी कुछ न कुछ [illegible] रहता ही है। [illegible] विषय मे भी जानना चाहिए। जब [illegible] प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा

बताओ—पहिले ऐसा कहने वालो ने पीछे उसके यहा क्यो खाया ? इसका विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि उस मनुष्य ने वास्तव मे वैसा नही कहा है। किन्तु उसके भीतर उत्पन्न हुए क्रोध ने वैसा कहा है। क्रोध के समय उसका दिमाग ठिकाने नही था। उस समय वह क्रोध मे अन्धा हो रहा था। उस पर क्रोध का भूत सवार था। जिसके आवेश मे वह वैसा कह गया।

इसी प्रकार क्रोध के आवेश मे मनुष्य कह देता है कि मैं तेरे घर पर कभी नही आऊगा। यदि तेरे घर पर आऊ तो भगी के घर जाऊ ? परन्तु क्रोध शान्त होने पर वह उसके घर जाता है, या नही ? जाता है। ऐसा कहना क्रोध की परवशता का फल है। इसी प्रकार मान आदि कषायो के उदय होने पर मनुष्य यद्वा-तद्वा बकने लगता है। परन्तु जब स्वभाव मे आता है, तब सब बाते शान्त हो जाती है।

यहाँ कोई पूछे कि सामायिक, पौषध, साधुपना और श्रावकपना क्या अव्रत मे है ? इसका उत्तर है कि ये सब अव्रत मे नही है। ये सब बाते तो बहुत ऊची श्रेणी की है। यदि ये सब बाते बहुत ऊची श्रेणी की है तो महाराज, आप कैसे कहते हैं कि जब अनन्तानुबन्धी कषाय मन्द हों और दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम या क्षयोपशम आदि हो, तब सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इसका उत्तर यह है कि जो उक्त कर्मों का क्षयोपशमादिक हो जाय, तो जीव के तत्वो का गाढ श्रद्धान हो जाता है, उसके हृदय मे देव-गुरु-धर्म पर गाढ प्रेम हो जाता है, उसके रग-रग मे श्रद्धा रम जाती है, जो कभी नही छूटती है। जैसे फूलो मे से इत्र निकाल लिया। अब जो फूल शेष रहा है, उसे सूघो तो उसमे भी सुगन्ध आती है, या नही ? गुलाब के फूलो मे से इत्र निकाल लिया। फिर भी उस फूल को भट्ठी लगाकर उसमे से अर्क निकालते है, जो गुलाब जल कहलाता है। भाई, सुगन्ध गुलाब का [illegible] गुण है। [illegible]

[illegible] कुछ न कुछ [illegible] जब [illegible] प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा

करते हैरान हो गये, परन्तु कोई भी सम्बन्ध करने को तैयार नही हुआ। जब कभी सेठानी सेठ से कहती कि लडकी को और कितनी बडी करोगे। तब सेठ खीज कर कहता—तूने ही लाड मे रखकर इसे बिगाड दिया है। कोई भी इसके साथ शादी करने को तैयार नही है। मैं क्या करू और कहा जाऊ ?

धीरे-धीरे अनेक वर्ष बीत गये और वह लडकी भी पूरी युवती हो गई। उसकी चिन्ता से सेठ-सेठानी की नीद हराम हो गई। और खाना-पीना दूभर हो गया। दैव-योग से इसी नगर के राजा के दीवान की स्त्री की मृत्यु हो गई। वह अधेड उम्र का था और दो-तीन बाल बच्चे भी थे। अत घर की सार-सभाल करने से वह तग आ गया। भाई, स्त्री के बिना घर का काम-काज नही चल सकता है। आदमी क्या कर सकता है ? आदमी का काम तो कमाने का है। परन्तु घर सभालने का काम तो स्त्रीजनो का ही होता है। अत वह स्त्री के बिना तग आ गया। वह विचारने लगा कि अब मैं क्या करू ? तब मित्र और कुटुम्बी जनो ने सलाह दी कि दूसरी शादी कर लो। दीवान ने कहा—भाई, मेरी उम्र काफी हो गई है। अब यदि शादी करूगा—तो वह शादी नही, बर्बादी ही सिद्ध होगी। परन्तु जब वह घर के काम से तग आ गया, तब उसने शादी के लिए कुटुम्बीजनो को 'हा' भर दी। भाई, शादी का काम ऐसा ही है। यदि होनी हो तो झट हो जावे। और यदि दिन निकल गये तो फिर होना कठिन हो जाती है।

प्रधानजी की शादी के करने की बात का पता सेठजी को लगा। उन्होंने सोचा कि यदि यह सम्बन्ध जम जाये तो बहुत अच्छा हो। वे एक दिन प्रधान जी के पास गये। उन्होंने प्रधानजी से कहा—दीवान साहब, अपनी बाई उम्र मे भी बडी है और रूपवती भी है। केवल उसका स्वभाव तेज है। यदि आप सम्बन्ध को स्वीकार करे तो मै आपके साथ उसकी शादी करने को तैयार हू। सेठ की बात सुनकर प्रधानजी ने मन मे सोचा—जब मै राजा के स्वभाव को [illegible], तो स्त्री के स्वभाव को सभालना कौन-सी कठिन बात है। [illegible] लडकी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उनकी

करते हैं। उसकी आज्ञा के बिना एक कदम भी इधर का उधर नहीं रखते हैं। अब तो यह बात राजा के कान तक भी पहुँच गई। लोगों ने राजा से कहा—हुजूर! अब तो दीवानजी आपके नहीं रहे। वे तो अब स्त्री के गुलाम बन गये हैं। राजा ने कहा—तुम झूठ बोलते हो। अरे, दीवान तो मेरा है। चुगलखोर ने कहा—हुजूर, ऐसी बात नहीं है। भाई, राजा लोग भी कानों के कच्चे होते हैं। अब तो राजा ने भी दीवान की परीक्षा करने का निश्चय किया।

एक दिन सदा की भांति आठ बजे ज्यों ही दीवानजी ने काम समेटना शुरू किया कि उसी समय राजाने कहा—दीवानजी, जो अमुक व्यक्ति का मुकद्दमा चल रहा है, उसकी फाइल मेरे सामने लाओ? दीवानजी ने कहा—हुजूर, अब समय हो गया है, अत यह काम कल हो जायगा। राजा ने कहा—नहीं, अभी लाओ। जब यह सुना तो दीवान परेशानी में पड गया। उसने सोचा—अब मैं क्या कर सकता हूं? धनी का धनी कौन है। एक बार और अर्ज करके देखता हूं। यदि मान जाये, तब ठीक है। अन्यथा हुक्म तो बजाना ही पडेगा। यह सोचकर दीवान ने फिर कहा—अन्नदाता, यह काम कल के लिए रख दीजिए। राजा ने उत्तेजित होते हुए कहा—नहीं, यह काम अभी होगा।

अब दीवानजी चुपचाप काम में लग गये। मामले को निपटाते हुए ग्यारह बज गये। जब वे घर गये, तब देखा कि महल का दरवाजा बन्द है। प्रधानजी ने दरवाजा खोलने के लिए कई बार पुकारा। वह तो सो चुकी थी। फिर कौन दरवाजा खोलता। निदान दीवानजी पड़ोसी के यहां जाकर सो गये। दूसरे दिन भी राजसभा में वही की वही बात हुई और काम करते हुए बारह बज गये। तब उन्होंने सोचा कि अब तो इस दीवानगिरी से त्यागपत्र ही देना पडेगा। क्योंकि इस प्रकार तो काम नहीं चल सकता है। तीसरे दिन राजाने एक बजा दिए। काम पूरा होते ही दीवान ने त्यागपत्र लिखा कि हुजूर, अब मेरे से काम नहीं हो सकता है, अतः अवकाश दिया जाय। इस [illegible] लगाया। [illegible] रख दिया। राजा ने त्यागपत्र पढ़ा और विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिए? क्योंकि ऐसा होशियार दीवान का मिलना कठिन है।

जाका जोन स्वभाव, जावे नहि कबहू जीसे।
नीम न मीठा होय, खाओ चाहे गुड घी से॥

भाई, उसे घर से निकलने के बाद जो जो भयकर यातनाए भोगना पडी, उनसे उसका दिमाग ठिकाने आ गया। अब उसकी शुभ कार्यों मे प्रवृत्ति उत्तरोत्तर इतनी अधिक बढी कि एक बार सौधर्मेन्द्र ने अपनी सभा मे उसके सत्कार्यों की और उत्तम स्वभाव की प्रशसा की। इन्द्र के मुख से उसकी प्रशसा सुनकर एक मिथ्यात्वी देव को उस पर विश्वास नही आया। उसने सोचा कि मै अभी मनुष्य-लोक मे उसकी परीक्षा करता हू और देखता हू कि वह कितनी क्षमाशील है।

देव-परीक्षा

उस देव ने स्वर्ग से आकर दो साधुओ के रूप बनाये। एक वृद्ध साधु को तो उसने बगीचे मे रखा और दूसरे साधु के रूप मे वह दीवानजी की हवेली पर पहुचा। साधु को आता हुआ देखकर उस स्त्री ने उनका स्वागत करते हुए कहा—पधारो महाराज! साधुवेषी देव ने कहा—"मेरे गुरु महाराज बीमार है। उनके लिए लक्षपाक तैल की आवश्यकता है। मैने सुना है कि तेरे यहा लक्षपाक तेल है।" भाई, लक्षपाक तैल के तैयार होने मे लाख रुपये लगते है, तब वह एक लाख औषधियो मे तैयार होता है। परन्तु प्रधानजी के घर मे क्या कमी थी। अत उसने दासी को लक्षपाक तेल की शीशी लाने के लिए कहा। जब दासी शीशी लेकर आ रही थी कि देवता ने अपनी विक्रिया से उसका हाथ झटक दिया, जिससे शीशी नीचे गिरकर फूट गई और सारा तेल भूमि पर फैल गया। वह देव साधु तो चिढकर बोला—अरी, तूने यह क्या कर दिया? परन्तु उस स्त्री ने शान्त स्वर मे कहा—कोई बात नही। जा दूसरी शीशी ले आ। जब वह दूसरी शीशी ला रही थी, तब देवता ने फिर अदृश्यरूप से [illegible] झटका दिया और वह दूसरी शीशी भी गिरकर फूट गई। तब [illegible] [illegible] ने उसे तीसरी शीशी लाने को दासी से कहा। उस बार भी [illegible] देवता ने उसे भी गिरा दिया। इस प्रकार [illegible] शीशिया [illegible] फूट गई। [illegible] साधु [illegible] क्रोध मे आकर बोला

कि पुण्यवाणी कब तक करने योग्य है और कब छोड़ने योग्य है। इस विषय में अध्यात्म-पदकार पं० भागचन्द जी कहते हैं—

परिणति सब जीवनि की तीन भांति वरनी।
एक पुण्य, एक पाप, एक राग हरनी ॥ परिणति० टेर॥
तामें शुभ-अशुभ अन्ध, करत दोऊ कर्म-बन्ध।
वीतराग परिणति ही भव-समुद्र तरनी ॥परिणति०१॥
यावत् शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोग।
तावत् नित करन योग्य कही पुण्य करनी ॥परिणति०२॥
त्याग शुभ क्रिया-कलाप, मत करो कदाच पाप।
शुभ में न मगन होय शुद्धता न विसरनी ॥परिणति०३॥
ऊंच ऊंच दशा धार, चित प्रमाद को विडार।
ऊंचली दशातें मत गिरो अधो - धरनी ॥परिणति०४॥
'भागचन्द' या प्रकार जीव लहे सुख अपार।
याके निरधार स्याद्वाद की उचरनी ॥परिणति०५॥

भाइयो, जीवों के भावों की परिणति शास्त्रों में तीन प्रकार की कही गई है—एक पुण्यरूप शुभपरिणति, दूसरी पापरूप अशुभ परिणति और तीसरी शुद्धोपयोगरूप वीतराग परिणति। इनमें पुण्य-पापरूप दोनों परिणतियाँ तो कर्म-बन्ध करने वाली हैं और वीतराग परिणति भव-समुद्र से पार उतारने वाली है। यह जैन सिद्धान्त का अटल नियम है। परन्तु पदकार कहते हैं कि जब तक शुद्धोपयोग प्राप्त न हो, तब तक नित्य ही पुण्य क्रियाएं करने के योग्य कही गई है। यह शुद्धोपयोग दशा तब प्राप्त होती है [illegible] जब कि यह जीव [illegible]

[illegible]

है, उनमे छोटा-बडापन सदा ही रहा है। इसी प्रकार मनुष्यों मे भी छोटा-बडापन सदा रहा है और रहेगा।

ये बुद्धिवादी कहते है—साम्यवाद और समाजवाद का नारा लगाने वाले कहते है—कि हम सबको एक समान कर देगे। वे कहते है कि देख लो—कल तक जिन लोगो को सारी दुनिया राजा और महाराजा कहकर पुकारती थी और जिनके हुक्म मे उनकी सारी प्रजा चलती थी। परन्तु आज उनके सब विशेषाधिकार समाप्त करके उन्हे साधारण नागरिक के रूप मे लाकर खडा कर दिया है। अब वे अपने नाम के आगे राजा-महाराजा भी नही लिख सकते है। ऐसा कहने वालो से मेरा कहना है कि भले ही आप लोगो ने या वर्तमान भारत सरकार ने अपनी ओर से उनको एक-सा नागरिक बना दिया हो। परन्तु उनके पोते जो उनकी पुण्यवानी है, उसे क्या घटा सकते हो, या उनसे छीन सकते हो? जनता के हृदय मे उनके प्रति जो मान-सन्मान का भाव है, वह तो नही निकल सकता है। वे तो आज भी जिधर से निकलते है, लोग उन्हे उसी पदवी और सन्मान से सम्बोधित करते है। भाई, जिसके पोते पुण्य-वानी है, वह साधारण व्यापारी से बढकर बडा उद्योगपति बन जाता है और उसका सन्मान सर्वसाधारण से बहुत अधिक होने लगता है। यह प्रकृति का नियम है। ये बुद्धिवादी ऊपर के पद और अधिकार को भले ही छीन लेवे, परन्तु भीतर की पुण्यवानी को कोई भी कभी नही छीन सकता है।

आत्मा और कर्म

भाइयो, इसी प्रकार आत्मा का स्थान अजर-अमर है, स्थायी है और कर्मों का स्थान परिवर्तनशील है। इसलिए आत्मा और कर्म भी एक श्रेणी मे नही स्थापित किये जा सकते है। आत्मा सदा चेतन ही रहा है और चेतन ही रहेगा। कर्म सदा जड या अचेतन रहे है और सदा जड-अचेतन ही रहेगे। इनके इस स्वरूप को कभी भी कोई एक नही कर सकता है।

आज वैज्ञानिको ने मोमबत्ती आदि, लालटेन, गैस, बिजली आदि अनेक प्रकार के साधन बनाए। परन्तु पहिले दीपक के प्रकाश मे ही सब काम किये जाते थे। इन प्रकाशक साधनो के लिए अनेक कारखाने चलाने पडते है और

दे दीजिए। कुछ समय के बाद आपकी पूंजी वापिस लौटा दूगा। भाई, जैसे उसके घर मे लाखो की पूंजी गडी हुई है। परन्तु ज्ञान होने से वह इधर-उधर मागता फिरता है। इसी प्रकार हमारे आत्मा के भीतर अक्षय सुख की सम्पत्ति भी गडी हुई है। परन्तु उसका ज्ञान न होने से यह इधर-उधर सुख की खोज मे मारा-मारा फिरता है। जब उस लड़के को कोई ज्योतिषी बता देता है कि देख, अमुक स्थान पर तेरा धन गड़ा है। वहा पर खोद और धन निकाल ले। तब वह वहा पर खोदकर अपनी पूंजी को प्राप्त करके सुखी हो जाता है। इसी प्रकार हमारे त्रिकालज्ञ महान् ज्योतिषी सर्वज्ञ देव ने भी बता दिया है कि तेरे ही भीतर सुख का अक्षय भण्डार छिपा पड़ा है। अब तू पुरुषार्थ कर, और उसे प्राप्त करके सुखी बन जा। परन्तु हम मोहनींद मे ऐसे अचेत हो रहे है कि हमे भगवद्-वाणी का कुछ भान ही नही है।

भला बुरा करने वाला कौन ?

हमारे सामने जो कर्मों का यह खेल खेला जा रहा है, हम उसी मे भूल रहे है और ऐसा समझ लिया है कि आत्मा मे कोई शक्ति ही नही है। आत्मा कुछ भी नही कर सकती है और कर्म ही सब कुछ करने वाले है। धीरे धीरे हम मे और भी कमजोरी आई और कहने लगे कि जो कुछ भी भला-बुरा करने वाला है, वह ईश्वर ही है। पहिले आत्मा को छोड कर्मों को पकड़ा। फिर कर्मों को छोड़कर ईश्वर को पकड़ लिया। और कहने लगे कि हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश सब कुछ भगवान के हाथ मे है। अरे, लोग यहा तक कहने लगे कि ईश्वर की इच्छा के बिना पेड़ का पत्ता भी नही हिल सकता है। यही बात आप लोग भी कह रहे है और आपके व्यवहार मे भी आरही है। यद्यपि यह बात जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल है। परन्तु जब सिद्धान्त का ज्ञान हो, तब उसका कुछ विचार हो। देखो—जब आप लोग किसी के यहां विवाह की चिट्ठी लिखते है, तब उसमे भी लिखते है कि 'परमात्मा सहाय होगे'। अब कहो भाई, जो परमात्मा [illegible] है, जगत् का भला करने वाला माना जाता है। [illegible] किसी का बुरा करेगा? यदि परमात्मा [illegible] का बुरा करता है, तो वह परमात्मा नही, किन्तु दुरात्मा है

पारायण करना ही हुआ। उसमे से सार कुछ भी हस्तगत नही हुआ। किन्तु विचारशील व्यक्ति एक-एक पद को, एक-एक सूत्र को और एक-एक गाथा को ध्यान से पढते है और उस पर मनन-चिन्तन करते है कि इस पद मे भगवान ने क्या भाव निहित किया है और इसका क्या रहस्य है ? इस प्रकार मनन-चिन्तन-पूर्वक पढने से वे रहस्य प्रकट होने लगते हैं और फिर तो एक-एक पद, सूत्र और गाथा के अन्तर्निहित रहस्यो का खजाना ही खुल जाता है, जिनको हृदयगम करते हुए पाठक एक अपूर्व ही आनन्द का अनुभव करने लगता है।

आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन :

हा, तो मैं स्थान के विषय मे कह रहा था कि आत्मा का स्थान क्या है और कर्मों का स्थान क्या है ? जब शास्त्रो के भावो को गहराई से सोचा, तब पता लगा कि आत्मा का स्थान विवेक है, हलका पन है और अमूर्त्तपना है। तथा कर्मों का स्थान अचेतनपना, भारीपना और मूर्त्तपना है। जैसे जल मे तूबी को डालने पर वह जल के ऊपर ही तैरती है और पत्थर को डालने पर वह नीचे चला जाता है—डूब जाता है। अब यदि उस ऊपर तिरने वाली तूबी को भी पाषाण से बाध दिया जावे तो बताओ कि वह तूबी तिरेगी, या डूबेगी ? आप कहेगे कि वह तो डूबेगी ही। दुनिया भी कहेगी कि तूबी डूब गई। यथार्थ मे तो तूबी का स्वभाव डूबने का नही है, किन्तु पत्थर के सयोग से उसे भी डूबना पडा। भाई तूबी के समान आत्मा का स्वभाव ससार-सागर मे डूबने का नही है किन्तु कर्मो का स्वभाव तो पाषाण के समान डूबने का ही है। और जैसे नही डूबने के स्वभाव वाली तूबी पत्थर के सयोग से डूब जाती है। उसी प्रकार नही डूबने के स्वभाव वाला यह आत्मा भी कर्मो के सयोग से ससार मे डूब रहा है। शास्त्रकारो ने जीव और कर्म-पुद्गलो के स्वभाव का कथन करते हुए कहा है—

> ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवा इति जिनोत्तमै ।
> अधोगौरवधर्माणः पुद्गला इति चोदितम् ॥

[illegible] ऊर्ध्वगमन स्वभावी कहा है और पुद्गलो को [illegible] है।

कि करने पर भी वह रजाई के भीतर नहीं हुआ। तब अचानक चेलना के मुख से निकल गया कि 'उसका क्या हाल होगा ?' इसका भाव यह था कि जो साधु तालाब के किनारे बिना वस्त्र ध्यान लगाये खड़े हैं, ऐसे शीतकाल में 'उनका क्या हाल होगा।' इस वाक्य के मुख से निकलते ही राजा की नींद खुल गई। वे सोचने लगे कि अरे, मैं तो आज तक इसे पतिव्रता मानता था। परन्तु यह तो कह रही है कि 'उसका क्या हाल होगा।' इससे ज्ञात होता है कि इसका किसी अन्य पुरुष से अनुचित सम्बन्ध है और उसी का विचार करके ऐसा यह कह रही है। और उसकी चिन्ता कर रही है। बस, यह पतिव्रता नहीं है।

अब राजा ने न तो इस बात का कुछ निर्णय ही किया और न रानी से कुछ पूछा ही। वह रात उन्होंने बड़ी कठिनाई से काटी। प्रातःकाल होते ही नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर और वस्त्राभूषण पहिन कर वे भगवान महावीर के दर्शन करने को रवाना हो गये। इसी समय अभयकुमार सामने आगये और उन्होंने महाराज को नमस्कार किया। श्रेणिक ने कहा—अभयकुमार, जाओ और चेलना के महल के चारों ओर ईंधन और घास-फूस डालकर के उसमें आग लगा दो।

श्रेणिक के मुख से ये शब्द सुनते ही अभयकुमार एक दम स्तम्भित हो गये और बड़े भारी विस्मय में पड़ कर विचारने लगे कि जिस चेलना रानी पर महाराज का असीम प्रेम था, उस पर आज सहसा इतना रोष क्यों ? आज महाराज के मन में इतना आकस्मिक परिवर्तन क्यों हो गया ? बहुत सोच-विचार करने पर भी वे कुछ निश्चय नहीं कर सके। वे यह बात भी भलीभांति जानते थे कि महाराज जिस बात का निश्चय कर लेते हैं, उसे पूरा करके ही रहते हैं। वे भारी असमंजस में पड़े कि मैं क्या करूं ? क्या केवल महल को ही जलाऊं, अथवा चेलना रानी को भी उसके साथ में जलाना है ? अरे, महाराज भी किस [illegible] हैं कि [illegible] निरपराधी रानी [illegible] हो जाता [illegible] [illegible] भगवान के [illegible] जा रहे हैं। [illegible] [illegible] श्रेणिक महाराज [illegible]

अभय कुमार ने ज्यो ही श्रेणिक के मुख से उक्त शब्द सुने तो वे सीधे भगवान के समवसरण मे पहुचे और वस्त्राभूषण उतार कर, तथा पचमुष्टि केश लोच करके भगवान के सम्मुख उपस्थित होकर बोले—भगवन् ! मुझे भगवती जैनेश्वरी दीक्षा दीजिए। इस प्रकार दीक्षा धारण करके अभयकुमार मुनियो की श्रेणी मे जाकर बैठ गये।

इधर राजा श्रेणिक जब राजमहल पहुचे तो देखा कि रानी चेलना का महल जलकर राख बन चुका है। उसे देखते ही वे विलाप करने लगे—हाय, चेलने, तू कहा चली गई? हाय, मैने अपने ही मुख से अपना यह क्या सत्यानाश करा डाला? इस प्रकार कुछ समय तक विलाप करते हुए विचार आया कि अभयकुमार इतना मूर्ख नही है कि रानी को भी जला दे। अवश्य ही उसने चेलना को कही न कही छिपा दिया होगा? यह विचार कर उन्होने उस भस्म हुए महल के बीच मे खडे होकर 'चेलना, चेलना' पुकारना प्रारम्भ किया। चेलना ने ज्यो ही महाराज के ये शब्द सुने तो तलघर मे से आवाज दी—महाराज, मै यहा हू। यह कहती हुई चेलना तलघर से बाहिर निकली। उसे बाहिर निकलती हुई देखकर श्रेणिक का जी मे जी आया और चेलना की ओर स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए बोले—अरे, मैने तो तुझे जला देने का हुक्म दे दिया था। परन्तु अभय की सूझ-बूझ से तू [illegible] गई है।

कुछ देर के बाद श्रेणिक को याद आया कि अरे, मैने तो अभयकुमार को यह कह दिया 'जा रे अभय, जा'। कहीं वह भगवान के पास जाकर दीक्षा न ले ले? यह विचार कर वे तुरन्त [illegible] गए। वहा जाकर देखा कि अभयकुमार तो समवसरण मे दीक्षा लेकर मुनियो की श्रेणी मे बैठे हुए है। यह [illegible] अभयकुमार, आपने यह क्या किया? [illegible] अभयकुमार ने कहा— [illegible] कुमार [illegible] [illegible]

नी रगी कर लो। और जब वे आपसे कहे कि आप भी करो। तब आप झट कह देते हैं कि मुझ से तो तपस्या नही होती है। भाई, दूसरे से तो कहना आसान है। परन्तु जब स्वय करने का अवसर आता हे तब अगल-बगल झाकने लगते हो।

परन्तु भाई, अभयकुमार मुनि ने श्रेणिक मे कहा—राजन्! हमारा-आपका पुराना सम्बन्ध समाप्त हो गया है। अब मैं वापिस घर को जाने वाला नही हू। तब श्रेणिक बोले- तुमने मेरी आज्ञा के बिना दीक्षा कैसे ले ली? तब अभय मुनिराज ने कहा—राजन्, अपने वचनो को याद करो। आपने कहा था कि 'जा रे अभय, जा'। आपके यह कहने पर ही मैंने आकर के दीक्षा ले ली। यह सुनकर श्रेणिक ने कहा—अरे, मैंने जाने को नही कहा था। वह तो क्रोध मे कहा था। अत अब तुम मेरे साथ चलो। अभय मुनिराज ने कहा—राजन्, ऐसे कुल का नही हू कि गृह-त्याग करके फिर वापिस घर को जाऊ? अब आप सन्तोष कीजिए। अन्त मे श्रेणिक निराश होकर और भगवान की वन्दना करके वापिस लौट आये।

भाइयो, देखो कर्म के खेल? वही राजा पहिले चेलना को जलाने की आज्ञा देता है, फिर वही चेलना को बचाने की सोचता है। एक बार वही अभय से कहता है कि मै दीक्षा की आज्ञा नही दूगा और दूसरी बार वह आज्ञा भी दे देता है। ये सब कर्मो के ही खेल है। और समय की बलिहारी है। जब समय अनुकूल होता है, तब काम शीघ्र हो जाता है और जब समय प्रतिकूल होता है तब लाख प्रयत्न करने पर भी काम सिद्ध नही होता है।

हा, तो यह बात कही जा रही थी कि आत्मा का स्थान तो अजर-अमर है और कर्मों का स्थान [illegible] का है। अब कोई कहे कि हम तो संसार में ही रहना है, तो वह कर्मों का साथ नहीं छोड़ेगा और न उनके भीतर कर्मों को छोड़ने की बुद्धि ही आयेगी। हा, जिसे संसार छोड़ना है, उसे इस संसार [illegible] है। [illegible]
[illegible] आत्मा

गुरु के विना घर की पढाई का भी कोई अर्थ नही है। नमक के विना भोजन का कोई स्वाद नही आता है। इसी प्रकार यश के विना जीना भी बेकार है। किसी ने आयु तो अस्सी वर्ष की पाई, किन्तु यश कितना पाया ? कुछ भी नही ? वह जहा भी जाता है, वही उसका अनादर और अपयश होता है। भाई, वह जीते हुए भी मृतक के समान है। किन्तु जिसका यश सर्वत्र फैला हुआ है, तो वह मर जाने पर भी जीवित ही है। कहा भी है—

जिसकी शोभा जगत मे, वा को जीतव धन्न।
जीवत्त ही मूआ चला, सुणे कुशोभा कन्न॥

और भी कहा है—

आस्था सता यश. काये, नह्यस्थायिशरीरके।

अर्थात् सन्त पुरुषो की आस्था चिरस्थायी यशरूपी शरीर मे होती है, इस क्षण-भगुर शरीर पर उनकी आस्था नही होती है।

जिनका यश ससार मे फैला हुआ है, वे मर करके भी जीवित है और जिनका अपयश सर्वत्र फैल रहा है, वे जीवित होते हुए भी मरे के समान है। इसी प्रकार जिनकी भावना पवित्र नही है, उनकी धर्म-करणी भी किसी लेखे मे नही है। क्योकि आचार्यो ने कहा है—

'यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या।'

अर्थात् भावो के विना की गई धर्म-क्रियाए भी कोई भी फल नही देती है। कहा भी है कि—

'होती नही सफल भाव-बिना क्रियाए।'

हा, तो मै आत्मशुद्धि पर कह रहा था। ऊपर की जो शुद्धिया है— मन-मिलाप है—उनमे भी जब प्रकृतियो का एकीकरण नही होता है, तब फिर आत्म-शुद्धि की मजिल तो बहुत दूर है। जब पहिली मजिल पर चढते हुए ही गिर रहे है, तब आगे की मजिलो को पार करना तो बहुत कठिन है। यदि मन मे शान्ति आ गई तब किसी दूसरे की कुछ कहने की आवश्यकता नही है। [illegible] वस्तु का ग्रहण कर लेगा।

[illegible] है, [illegible] यदि किसी [illegible] मे कहा-सुनी हो

गुणी पुरुषो को देखकर प्रमोद को प्राप्त होता है, उसमे उन गुणो की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। दूसरा आत्मसिद्धि का मार्ग यह है कि जो बात तुम अपने लिए बुरी समझते हो, दुखदायक मानते हो, उसे दूसरे के साथ व्यवहार मत करो। महर्षियो ने कहा है कि—

श्रूयता धर्मसर्वस्व श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्॥

धर्म का सर्वस्व यही है, इसे ही सुनना चाहिए और सुन करके हृदय मे अवधारण करना चाहिए कि जो-जो कार्य तुम अपने लिए प्रतिकूल समझते हो, उन्हे दूसरो के साथ आचरण मत करो।

जब आपने अपनी आत्मा का दमन कर लिया और दूसरे की आत्मा को अपने समान समझ लिया, तभी आप भगवान् के भजन करने के अधिकारी हो सकते है। जब तक आपने अपनी आत्मा को नही पहिचाना और दूसरे की आत्मा को भी नही पहिचाना, तब तक हरे हरे, शकर शकर या महावीर महावीर करते रहो, उससे क्या लाभ होने वाला है। वह तो वैसा ही जाप है जैसा कि दुमट से सड़क कूटने वाले 'जय हनुमान' बोलते हुए सड़क को कूटा करते है। वे हनुमानजी को नही सुमरते है, किन्तु एक साथ हाथ को उठाने को बोलते है। ऐसे भोले भक्तो से भगवान् कहते है कि जिसने अपनी आत्मा का दमन किया नही, और पराये गुण लिए नही, तब तक तुम मेरे भजन करने के अधिकारी नही हो। और फिर बतलाया गया है कि—

गुणी देखकर करो वन्दना निर्गुण देख नहीं द्वेष करे।
दुखी जीव पै करुणा लाणे मित्र भाव को पेश करे॥

जिस व्यक्ति मे हमको गुण दिखे कि उस व्यक्ति मे मेरे से यह गुण अधिक है, तो देखते ही जैसे फला हुआ [illegible] का पेड़ झुक जाता है वैसे ही झुक जाना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई [illegible] मनुष्य मिले तो उस पर द्वेष नहीं करना चाहिए। [illegible] दुखी मनुष्य को देखकर [illegible] करना और उसे [illegible] चाहिए। [illegible] चाहिए कि हे भगवान्, [illegible]
[illegible]

उपदेश को सुनकर तदनुकूल आचरण करने वाला श्रोता आत्महित कर लेता है और वक्ता खाली रह जाता है।

इसलिए यह सोचना और विचार करना चाहिए कि आत्म-सिद्धि करना बडा गहन कार्य है। इस तत्त्व को समझना, उस पर चलना और अन्त तक उस पर कायम रहना बच्चो का खेल नहीं है। उसके लिए तो भारी त्याग करना पडेगा। उसे भारी कुर्बानी देनी पडेगी। भाई, त्यागी महापुरुषो का यह मार्ग है। जो महापुरुष त्याग को अपने जीवन का लक्ष्य बनायेंगे, वे ही आत्मसिद्धि को प्राप्त कर सकेंगे। बिना त्याग के इस पर चलना बहुत कठिन है।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–४
सिंहपोल, जोधपुर

●●

कितने ही वक्ताओ ने हिन्दी मे अपने भाषण दिये हैं। परन्तु मैं तो मारवाड मे जन्मा हू, इसलिए मुझे तो मारवाडी मे ही बोलना पसन्द है। आज आप लोगो ने जो भाषण सुने है, उनमे एक ही बात 'विश्वमैत्री' की कही गई। अर्थात् सारे विश्व के साथ मैत्री भाव रखना चाहिए। यह बात इन्होने नही, मैंने नही, किन्तु भगवान महावीर ने अढाई हजार वर्ष पूर्व कही है। भगवान ने कहा है—**'मित्ती मे सव्व भूएसु वेर मज्झं ण केण वि'** । विश्व के सर्व-प्राणियो पर मेरा मैत्री भाव है, किसी भी प्राणी के साथ मेरा वैर भाव नही है। प्राचीन काल से ही ऐसी स्वर्णिम-शिक्षाए हमारे पूर्वजो को मिली है और उन्हें ही हम लोग आप सबको सुना रहे है। भाई, इन अनमोल वचनो मे कितना गौरव, कितना बडप्पन और कितना विश्व-बन्धुत्व का भाव भरा हुआ है, यह विचारने की बात है। यह स्वर्णिम दिव्य-उपदेश अपने पास नया नही है, किन्तु पुराना ही है। महापुरुषो के प्रताप से ही ऐसी उत्तम शिक्षाए आज हमारे पास बनी हुई है। अन्यथा जैनधर्म पर कितनी-कितनी आपदाए आई और कैसे-कैसे विकट संकटकाल आये, परन्तु जैनधर्म का बचाव हुआ तो केवल भगवान महावीर के वचनो से ही हुआ है।

खमत-खामणा का हार्द :

आज लोग कहते है कि 'खमत-खामणा' करने से क्या होता है ? अरे भाई, आप कहो तो इस प्रथा को बन्द कर दे ? परन्तु जो उत्तम काम के लिए परम्परा चली आ रही है, तो उत्तम काम करते-करते ही परिवर्तन आते है। यदि कोई कहे कि आपके शरीर मे शक्ति नही है, तो रोटी खाने से क्या लाभ है ? अरे भाई, यदि रोटी खाना छोड देगा, तो क्या शक्ति आ जायगी ? बिना खाये क्या वह उठ सकेगा ? और क्या कोई काम कर सकेगा ? जैसे शक्ति-सचय के लिए भोजन करना आवश्यक है, पानी पीना आवश्यक है और नींद लेना आवश्यक है। इसी प्रकार आत्मोत्थान के लिए भगवान की वाणी के सुन्दर आचार [illegible] का व्यवहार करना और उन पर अमल करना भी आवश्यक है। 'खमत-खामणा' की जो परिपाटी चली आ रही है, वह बहुत उत्तम है। [illegible] हम [illegible] है। [illegible] इन परम्पराओ को

जाय, तो उस का प्रभाव सारे शरीर पर पडता है और वह विकलाङ्ग कहलाने लगता है। इसी प्रकार समाज मे जो सम्प्रदाय अलग-अलग काम कर रही हैं, यदि उन्हे मिटा दिया जाय या विलीनीकरण कर दिया जाय, तो उसमे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नही होगा। जो मर्यादाए बधी हुई है, उनके भीतर रहकर के ही धर्म और समाज के उत्थान का कार्य करना चाहिए। भगवान महावीर ने ऐसे सुन्दर नियम बनाये और आचार्यों ने ऐसे उत्तम नियम चलाये कि जो सदा सर्व को सुख-दायक है। त्रिकाल मे भी किसी को दु खदायी नहीं है। परन्तु समय के प्रवाह से उनमे जो विकार दृष्टिगोचर हो रहा है, उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

भाई, खान-पान आदि की असावधानी से आख मे मोतिया बिन्दु हो गया। अब उसे हटाने की आवश्यकता है, आखो को ही फोड देना उचित नहीं है। आख तो उत्तम है, ज्योति भी अच्छी है। परन्तु जो उसमे विकार आ गया है, उसे ही केवल दूर करना उचित है। इसी प्रकार सम्प्रदाय मे यदि कोई विकार दृष्टिगोचर होता है, तो उसे ही दूर करना चाहिए, न कि सम्प्रदाय को ही समाप्त कर देना चाहिए।

सनातन धर्म के विद्वान् माधवाचार्य ने कहा कि आत्मोत्थान के लिए तीन बातो की आवश्यकता है—भक्ति, दया और विश्वास। यदि ये तीनो बिखरी हुई चीजे एकत्रित हो जाये तो भारत का उद्धार हो जाय। भक्ति वैष्णवो मे अधिक पाई जाती है। विश्वास जैसा मुसलमानो मे देखा जाता है, वैसा, दूसरो मे नही है। और दया जैसी जैनियो मे पाई जाती है, वैसी दूसरो मे नही है। ये तीन बाते जो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय मे विशेष रूप से पाई जाती है, उन्हे यदि एकत्रित कर दिया जाय तो भारत का उद्धार होने देर न लगे। कहने का भाव यह है कि आत्मोत्थान के लिए भी भक्ति, श्रद्धा और दया इन तीनो की ही आवश्यकता है। जब समाज मे ये तीनो होगी, तब समाज का उत्थान होने मे विलम्ब नही लगेगा।

भाइयो यदि हमारे भीतर भी विश्वमैत्री की भावना है तो मूर्तिपूजक श्वेताम्बर, दिगम्बर और स्थानकवासी तथा तेरापंथी सब एक हो जायें। यदि

तैयार हो जावे, तो हम उन्हे मान सकते है। यदि छह मास का बच्चा भी सीधा रास्ता बताएगा तो क्या नही मानेगे ? फिर नवयुवक तो हमारी समाज के दीपक है। किन्तु वे यद्वा-तद्वा खाना-पीना छोडे नही, बीडी-सिगरेट छोडे नही, और फिर भी हमारे ऊपर सवार होकर आते है और कहते है—महाराज, ऐसे नही, ऐसे करो, तो हम उनका कहना मानने को तैयार नही है।

भाइयो, हमे तो भगवान की आज्ञा के साथ आगे बढना है। भगवान महावीर ने तो विश्वमैत्री के प्रचार मे अपना समस्त जीवन ही अर्पण कर दिया। उनका प्रथम उपदेश वाक्य है—**'मित्ती मे सव्वभूएसु'**। सारे जीवो के साथ मैत्री भाव रखो। उन्होने इस विश्वमैत्री का स्वय आजीवन पालन किया और दूसरो को इसी पर चलने की प्रेरणा दी। यही कारण है कि उन पर घोरातिघोर उपसर्ग करने वालो पर भगवान ने पूर्ण मैत्री-भाव रखा और उसी के फल स्वरूप चण्डकौशिक जैसे विषधर सर्प भी शान्त हो गये। गजसुकुमालजी ने अपने सिरपर अगारो की तीव्र वेदना इसी एक मात्र मैत्री भाव से सहन की। खन्धकजी ने अपनी खाल उतरवाई तो इसी एक मैत्री-भाव के आधार पर। अन्यथा क्या कोई जीते-जी अपनी खाल उतरवा सकता है और सिरपर खैर के धधकते अगारो की तीव्र वेदना सह सकता है ? जिन-जिन भी महापुरुषो ने ये घोरातिघोर उपसर्ग सहकर मुक्ति को प्राप्त किया, उन सभी ने **'मित्ती मे सव्वभूएसु'** इस एक वाक्य के ही आधार पर आत्म-कल्याण किया है। उन्होने यह बात भलीभाति जान ली थी कि आत्मा का उद्धार इस विश्वमैत्री भावना से ही हो सकता है, अन्य प्रकार से नही।

लोकैषणा को छोडो!

भाइयो, जहा यशोलिप्सा है, वहा भौतिक एषणा है। अत लोकैषणा को छोडकर आध्यात्मिकता मे आ जाओ और गलतफहमियो को हटाकर एक-एक [illegible] के समीप आने का प्रयत्न करो। आपने विचार किया कि [illegible] महाराज [illegible] है, तब आपने प्रयत्न किया और यहा पर आए। [illegible] है और वह सब कुछ जानता है। अब आपने भी अपने विचार [illegible] और हमने भी अपने विचार आपके सामने रखे। इसमे [illegible]

ही अंग है। यदि अन्यतीर्थी भी मिलें, तो उनमें भी गुण हैं, वात्सल्य भाव है और यदि वे समाज का भला करने वाले हैं तो उन पर भी मैत्री-भाव की भावना रखना चाहिए। कहा है—

> पखा-पखी मे पचरया जे नर मत कर हीन।
> ज्ञानवन्त निरपक्ष रहे—सकल मत परवीन

अन्य मतावलम्बी भाई जो भी अच्छा काम करते हैं, तो हम उनमें भी सम्मिलित हैं। परन्तु जो अपना मताग्रह रखते हैं, अपने को ही अच्छा और दूसरों को बुरा समझते हैं, उनसे क्या प्रयोजन है? फिर भी उनके साथ माध्यस्थभाव रखना चाहिए। विद्वेषभाव तो उन पर भी नहीं रखना चाहिए। हमें मैत्री-भाव की इस प्रकार से वृद्धि करनी चाहिए और ऐसा सुन्दर वातावरण बनाना चाहिए कि जिसे देखकर संसार भी आश्चर्य चकित हो जाय। भाई, यहां लेने-देने को कुछ भी नहीं है। पात्र लेकर गोचरी को हम भी जाते हैं और वे भी जाते हैं। दोनों के ही पैरों में न पगरखी है और न माथे पर तिलक ही। अहंकार की जितनी भी वस्तुएं थीं, वे सभी खोल दी हैं। भगवान महावीर ने सभी परिग्रह का त्याग करा दिया है। जब केवल निर्मूल भ्रान्त धारणाएं क्या उत्पन्न हों? यदि कोई साधु निकले तो उसे देखकर के मुख नहीं फेरना चाहिए। किन्तु आदर और प्रेम से पूछना चाहिए कि आप कहां से पधारे हैं? अरे, पूछने में भी क्या भूत लगता है?

भाई, विद्वेषभाव कब उत्पन्न होता है? जब कोई सम्प्रदाय वाला अपने आपको सबसे ऊंचा समझता है। और फिर कुछ ऐसे लोग जाकर कहते हैं कि हां महाराज, आप जैसी करनी किसी की नहीं है। तब उनका अहंकार सातवें आसमान पर चढ़ जाता है। एक श्रावक जी ऐसे सन्त के पास गये और 'मत्थएण वंदामि' कहके कहने लगे—महाराज, आप तो चौथे आरे की बानगी हो। [illegible] लोग [illegible] आते हैं। अपनी प्रशंसा सुनकर [illegible] [illegible] श्रावक [illegible]। इस प्रकार एक दूसरे की प्रशंसा कर [illegible] [illegible]। परन्तु भाई, [illegible]

७ | समाधि कैसे प्राप्त हो ?

बन्धुओ, आज मै आप लोगो के समक्ष 'समाधि' विषय पर कुछ विवेचन करूंगा। यदि आप ध्यानपूर्वक सुनेंगे और इसमे से कुछ तत्त्व ग्रहण करेंगे तो आपके जीवन मे भी सुख-शान्ति का निर्झर प्रवाहित होने लगेगा।

समाधि नाम है सुख-साता या शान्ति का। आप किसी भाई-बन्धु के यहा जाते है और उसके यहा जाकर पूछते है—क्यो साहब, आप मजे मे है? आपकी भाषा—आनन्द मे, राजी-खुशी मे या मजे मे है। जबकि साधु-सन्तो की भाषा 'सुख-साता है, समाधि है।' भाई, बात एक ही है—राजी-खुशी कहो, चाहे सुख-साता कहो और चाहे समाधि कहो। सबका अर्थ एक ही है। परन्तु साधु-सन्तो की भाषा मे और गृहस्थो की भाषा मे बोलने का अन्तर है। जैसे आप अपने किसी बन्धु आदि से पूछते है कि 'जीम लिया साहब!' जब कि मुनि-महात्मा कहते है कि 'आहार-पानी कर लिया।' आप कहते है कि '[illegible] [illegible] लाना।' और मुनि कहते है—कि 'पात्र लाना।' आप कहते है कि 'काम कर लेना।' और मुनि कहते है कि 'अवसर देख [illegible]।' आप [illegible] के [illegible] को 'ओनी-कुनी' कहते है और हम लोग '[illegible]' कहते है। इस प्रकार साधु और श्रावक के सभी व्यवहार व भाषा में [illegible] है। आप कहते है [illegible] कर लेना। परन्तु हम कहते है कि '[illegible]

दूसरी है आध्यात्मिक समाधि। इसमे लीन होने पर सासारिक सभी आधि (मानसिक चिन्ता) और व्याधि (शारीरिक चिन्ता) तथा सकल्प और विकल्प शान्त हो जाते है। इसी समाधि के द्वारा यह आत्मा अनादिकाल से लगे एव सर्वदोषो के मूल कारण कर्मों का नाश करके परम ब्रह्मपद को प्राप्त करता है और सदा के लिए ससार के सर्वसकटो से मुक्त हो जाता है। भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हुए समन्तभद्र स्वामी कहते है—

> स्वदोषमूल स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात् क्रियाम्।
> जगादतत्त्व जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः॥

हे भगवन, आपने अपने सर्वदोषो के मूलकारण भूत राग-द्वेषादि-भाव कर्मों को, तथा ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्मों को भस्म करके केवलज्ञान प्राप्त किया और ससार से पार उतरने के इच्छुकजनो को आत्म-तत्त्व का उपदेश दिया। तथा परब्रह्म परमेश्वर बनकर अमृतपद को प्राप्त किया।

महर्षियो ने इस आध्यात्मिक समाधि के ऊपर अनेक महान् और गम्भीर ग्रन्थो की रचना की है। परम समाधिनिष्ठ पूज्यपाद स्वामी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ समाधितत्र को पूर्ण करके समाधितत्त्व का उपसहार करते हुए कहते है—

> मुक्त्वा परत्र-परबुद्धिमहधिय च,
> ससारदु.खजननीं जननाद्विमुक्त।
> ज्योतिर्मय सुखमुपैति परात्मनिष्ठ—
> स्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितन्त्रम्॥

जो भव्य-पुरुष ससार के दुखो को उत्पन्न करने वाली इस शरीरादिक पर-वस्तु मे आत्मबुद्धि को और आत्मा मे पर-बुद्धि को अर्थात् अपने सुख-दुखादि को देने वाला अन्य पर पुरुष है, इस प्रकार की बुद्धि को छोडकर अपने परम शुद्ध आत्मा मे निष्ठ या लीन होता है, वह इस ससार (भव) समुद्र से विमुक्त होकर ज्योतिर्मय-केवलज्ञान और अनन्तसुख को प्राप्त होता है। जो भव्य [illegible] (पूज्य श्री पाद का ग्रन्थ) का इसी प्रकार हृदयगम करके [illegible] करता है, वह परमात्मपद को प्राप्त करता है।

हाथ मे नही है। जब कमाना अपने हाथ मे नही है, तब घर की पूजी तो चली गई। अब दूसरे से जो दस-पन्द्रह हजार कर्ज लाये थे, वह कहा से चुकाओगे? भाई, भूखे दिन निकालना तो आसान है, परन्तु दूसरे की देनदारी माथे रखकर दिन निकालना कठिन है। बस, ऐसा व्यापार-धन्धा करना ही असमाधि का कारण है। घर की पूजी का विनाश तो सहन हो सकता है। परन्तु पराई पूजी का चला जाना सहन नही हो सकता है। जब मागने वाला आकर अपनी रकम मागेगा, तब स्त्री के आभूषण और घर वार वेच कर उसका रुपया देना पडेगा। यदि देने मे कम वतलाओगे तो लोग कहेगे कि अजी, इसकी नीयत खराब है, इसने वेईमानी की है। माल दावकर वैठ गया है और अब देने के नाम पर चार-आठ आना वताता है और हाथ ऊचे करता है। इस प्रकार पराई पूजी लेकर व्यापार करने का परिणाम यह हुआ कि घर मे घाटा पडने पर भी दूसरो की दृष्टि मे आप वेईमान सिद्ध हो गये। भाई, यही असमाधि का काम किया और अपनी सहज शान्तिसमाधि को गवा दिया।

असमाधि के कारण

भाइयो, आज आप लोगो के कलेजे क्यो सूख रहे है? खाया-पिया अगे क्यो नही लग रहा है? आजकल कमाई तो वहुत है। पहिले साल भर मे दो सौ, चार सौ, हजार और बहुत हुआ तो पाच हजार रुपयो का वढाव होता था। इससे आगे क्या कभी आपने वढाव देखा? परन्तु आज साधारण से साधारण दुकानदार के हजारो का वढाव है। पर यह वढाव किस काम का है? पहिले का वढाव था तो वह लाभ का था। दो सौ का भी वढाव होता था तो वह घर मे रहता था। परन्तु आज तो व्यापारियो के पास दूसरे लोगो की पूजी है। आप पचास हजार रुपया माथे लाये है तो घर मे रखने के लिए नही लाये है। वे माल पर लगे हुए है। घर के भीतर तिजोरी मे नही है। यदि मागने वाला आ करके कहता है कि लाओ हमारे पचास हजार! तब आपको कहना पड़ता है कि साहब, अभी नही है। वह कहता है कि तुम्हारी नीयत खराब है, इस प्रकार के शब्द सुनने पडते है और अपमानित होना पडता है। भाई यही असमाधि है, जो पचास हजार की पूजी जाता है। परन्तु

आचार्यों ने स्वामि-सेवक के जिस उपकारी भाव का उल्लेख किया है, वह दर्शनीय है। वे लिखते है—

'स्वामि-भृत्यादिभावेन वृत्तिः परस्परोपग्रहः। स्वामी तावत् वित्त त्यागादिना भृत्यादिनामुपग्रहे वर्तते। भृत्याश्च हितप्रतिपादनेन अहितप्रतिषेधेन च स्वामिनमुपकुर्वते।'

अर्थात्—स्वामी धनादि को देकर नौकर-चाकरो का उपकार करता है और नौकर-चाकर हित की बात कहकर और अहित का प्रतिषेध कर स्वामी का उपकार करते है।

भाइयो, पहिले स्वामी और सेवक मे कैसा उत्तम भाईचारे का व्यवहार था। सेवक के सेवाभाव को भी स्वामी उसका उपकार मानता था और सेवक भी स्वामी से मिलने वाले वेतनादि को उसका उपकार मानता था। परन्तु आज यह स्वामि-सेवक का मधुर सम्बन्ध समाप्त हो गया। अब तो यदि नौकर दो दिन काम करने को नही आता है, तो मालिक उसका वेतन काट लेता है। भले ही वह अपनी बीमारी या कुटुम्ब की बीमारी आदि के कारण नहीं आ सका हो। इसी प्रकार यदि आज मालिक किसी विपत्ति या बीमारी से ग्रस्त हो रहा है, तो नौकर लोग भी उसकी कोई परवाह नही करते है। आज दोनों ही ओर से रस्साकशी या खींचतान है। तभी दोनो ओर असमाधि है। यदि यह खींचतान बन्द हो जाय तो दोनो ओर समाधि आते देर नहीं लगेगी।

पहिले घर के जितने कुटुम्बी लोग होते थे, वे सभी आपस मे प्रेम से रहते थे। देवरानी जिठानी का सम्मान रखती थी और वह देवरानी से छोटी बहिन जैसा सद्भाव रखती थी। सास और बहू का परस्पर मे माता और पुत्री जैसा व्यवहार रहता था। भाई-भाइयो मे परस्पर राम-लक्ष्मण जैसा असीम प्रेम रहता था। सब एक दूसरे को देखकर प्रसन्न होते थे और एक दूसरे की सेवा करने मे अपना जीवन सफल मानते थे। परन्तु आज तो यह हाल है कि एक दूसरे को देख नहीं सकता। कोई किसी की सेवा नहीं करना चाहता। इसलिए किसी को भी आराम नहीं है, सभी दुःखी है।

आचार्यो ने स्वामि-सेवक के जिस उपकारी भाव का उल्लेख किया है, वह दर्शनीय है। वे लिखते है—

'स्वामि-भृत्यादिभावेन वृत्ति. परस्परोपग्रह.। स्वामी तावत् वित्त त्यागादिना भृत्यादिनामुपग्रहे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेन अहितप्रतिषेधेन च स्वामिनमुपकुर्वंते ।'

अर्थात्—स्वामी धनादि को देकर नौकर-चाकरो का उपकार करता है और नौकर-चाकर हित की बात कहकर और अहित का प्रतिषेध कर स्वामी का उपकार करते है।

भाइयो, पहिले स्वामी और सेवक मे कैसा उत्तम भाईचारे का व्यवहार था। सेवक के सेवाभाव को भी स्वामी उसका उपकार मानता था और सेवक भी स्वामी से मिलने वाले वेतनादि को उसका उपकार मानता था। परन्तु आज यह स्वामि-सेवक का मधुर सम्बन्ध समाप्त हो गया। अब तो यदि नौकर दो दिन काम करने को नही आता है, तो मालिक उसका वेतन काट लेता है। भले ही वह अपनी बीमारी या कुटुम्ब की बीमारी आदि के कारण नहीं आ सका हो। इसी प्रकार यदि आज मालिक किसी विपत्ति या बीमारी से ग्रस्त हो रहा है, तो नौकर लोग भी उसकी कोई परवाह नही करते है। आज दोनो ही ओर से रस्साकशी या खीचतान है। तभी दोनो ओर असमाधि है। यदि यह खीचतान बन्द हो जाय तो दोनो ओर समाधि आते देर नही लगेगी।

पहिले घर के जितने कुटुम्बी लोग होते थे, वे सभी आपस मे प्रेम से रहते थे। देवरानी जिठानी का सम्मान रखती थी और वह देवरानी से छोटी बहिन जैसा सद्व्यवहार रखती थी। सास और बहू का परस्पर मे माता और पुत्री जैसा व्यवहार रहता था। भाई-भाइयो मे परस्पर राम-लक्ष्मण जैसा असीम प्रेम रहता था। सब एक दूसरे को देखकर प्रसन्न होते थे और एक दूसरे की सेवा [illegible] मानते थे। परन्तु आज तो यह हाल है कि एक दूसरे [illegible] नहीं सकता। कोई किसी की सेवा नहीं करना चाहता। इसलिए [illegible] को भी आराम नहीं है, सभी दुखी है।

जिन-दीक्षा लेते ही ऐसा दृढ निश्चय कर लिया कि यदि मुझे मेरी लब्धि का आहार मिलेगा तो मैं करूंगा। अन्यथा नहीं करूंगा। यदि कोई भगवान नेमिनाथ का शिष्य जानकर आहार देगा तो नहीं लूंगा और यदि श्रीकृष्ण का पुत्र जानकर आहार देगा, तो भी नहीं लूंगा। परन्तु यदि मुझ में साधुपना समझकर कोई आहार देगा, तो मुझे वह आहार लेना कल्पेगा, अन्यथा नहीं कल्पेगा। यह नियम करके वे साधना करते हुए विचरने लगे।

अपनी आत्म-साधना करते हुए जब वे आहार को जावें, तभी लोग कहें कि भगवान नेमिनाथ के सन्त आये हैं। ज्यों ही उनके कानों में ये शब्द पड़े, त्योंही ढंढण मुनि आहार को विना लिए ही वापिस चले जावें। इसी प्रकार कभी गोचरी को जाने पर लोग कहें—देखो, ये महाराज कृष्णचन्द्र के पुत्र आ रहे हैं। इन्होंने राज-वैभव को छोड़कर संयम धारण किया है। बस, इतना सुनते ही वे वापिस वन को लौट जाते थे। इस प्रकार लगातार गोचरी को जाते और विना आहार ग्रहण किये लौटते हुए छह मास बीत गये। उन्हें छह मास तक न आहार मिला और न पानी मिला।

आप लोग आश्चर्य करेंगे कि छह मास तक विना अन्न और जल के वे कैसे रह गये? परन्तु भाई, उस समय के शरीर का संहनन भी ऐसा ही था कि आठ मास की तपस्या विना अन्न और पानी के कर सकते थे। भगवान् ऋषभदेव के समय में बारह मास की उत्कृष्ट चतुर्विधाहार-त्याग की तपस्या था। श्री बाहुबली ने एक वर्ष का प्रतिमायोग धारण किया था और वे पूरे एक वर्ष अन्न-जल के विना रहे थे। भगवान् ऋषभदेवजी भी पूरे एक वर्ष तक अन्न-जल के विना रहे थे। भगवान् अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ के समय में आठ मास की उत्कृष्ट तपस्या थी। और भगवान महावीर के समय में छह मास की उत्कृष्ट तपस्या थी। स्वयं भगवान महावीर ने छहमासी अनशन किया है।

इस प्रकार [illegible] रहते हुए ढंढण मुनि के पूरे छह मास बीत गए, [illegible]

कभी कोई श्रीकृष्ण का पुत्र कहकर उनका स्वागत करना और कभी कोई भगवान नेमिनाथ का शिष्य कहकर उन्हें आहार-पानी के लिए विनती करना। और ढंढण-मुनि इन शब्दों को सुनते ही सदा की भांति वापिस लौट जाते। उनके निराहार लौटने पर साथ के मुनिराजों को भी आहार से वंचित रह जाना पड़ता। इस प्रकार कुछ दिन तक तो उन मुनियों ने समता रखी और प्रतिदिन गोचरी के समय उनसे कहते रहे कि आप आहार-पानी के लिए हमारे साथ पधारें। किन्तु जब लगातार कई दिन उनको भी निराहार रहते बीते, तो समता नहीं रही। भाई, भूखे रहते हुए समता रखना बड़ा कठिन कार्य है। आखिर हिम्मत करके उन सन्तों ने ढंढण मुनि से कह ही दिया—

'सुनो मुनिवरजी, मत आओ म्हारे लार में।
में सुख नहीं पावों, जावों घर घर जी, थारी संगत भटकी खालो आवो॥

हे मुनिराज, कृपा करो, अब साथ में चलने का अवसर नहीं है। हम गोचरी के लिए आपके साथ जैसे जाते हैं, वैसे ही वापिस चले आते हैं। और हम आहार के बिना दुख पाते हैं, हमारी शक्ति आप जैसी नहीं है। यह सुनकर ढंढण मुनिराज समता की धारा में बहते हुए कहने लगे—सन्तो, [illegible] आप लोगों का क्या दोष है? यह तो मेरे ही अन्तराय कर्म का उदय है जो

अन्न का कीडा है। जब तक अन्न मिलेगा—टिका रहेगा। अन्न के विना तो यह जर्जरित ही हो जाता है। कहा भी है—

'काया कलकी कोटडी—अन्न जल समजो तेल।
विना अनजल के मिले, खतम होत सब खेल ॥१॥

जब तक कारखाने की मशीन मे तेल डालते रहते है, तब तक वह ठीक चलती रहती है। जहा तेल देना बन्द किया कि वह भी ठप्प हो जाती है और उसमे जग लग जाती है। इसी प्रकार शरीर भी एक मशीन है। इसमे भी जब तक अन्न-जल रूपी तेल पडता रहता है, तब तक यह हरी-भरी और चलती हुई दिखती है। जहा इसको अन्न-जल मिलना बन्द हुआ, वहा यह भी जवाब देने लगती है। भाई, यह सब करामात अन्नराजजी की है। इसमे थोडी-सी भी कमी पडी नही कि सारे हाथ पैर ठडे पड जाते है। हा, तो वे ढढण मुनि शरीर से अत्यन्त दुर्बल हो गये। परन्तु आत्मबल सबसे प्रबल है। आत्मबल के सामने शरीर-बल नगण्य है। अत शरीर से अत्यन्त दुर्बल हो जाने पर भी ढढण मुनिराज प्रतिदिन गोचरी को जाते और प्रतिज्ञानुसार आहार न मिलने से वापिस लौट आते थे। वे सदा ही आहार के लाभ की अपेक्षा उसके अलाभ को ही श्रेयस्कर समझते और उसे कर्म-निर्जरा मानकर अन्तरग मे हर्ष ही मानते थे। इस प्रकार वे निराहार रहकर बराबर अपनी साधना को समाप्त कर रहे थे।

एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान नेमिनाथ की वन्दना के लिए गये। उन्होंने भगवान की वन्दना करके अन्य मुनिराजो की भी वन्दना की और मनुष्यो की सभा मे आकर बैठ गये। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् उन्होंने भगवान से पूछा—भगवन्, आप की सभा मे अठारह हजार सन्त है। इनमे [illegible] नही होती है। परन्तु फिर भी इन सब मे उत्कृष्ट [illegible] होते है? भगवान ने उत्तर दिया—अहो कृष्ण, इन सब मे उत्कृष्ट [illegible] सुकुमार [illegible]

करके आनन्द न प्राप्त होता हो। सभी को पुत्र की प्रशंसा सुनकर हर्ष प्राप्त होता है।

भगवान के पास से उठकर श्रीकृष्णचन्द्र मुनिराजों की सभा में गये। पूछने पर ज्ञात हुआ कि ढंढण मुनि गोचरी के लिए गये हैं। अतः वे भगवान को वन्दन करके अपने राजमहल को वापिस लौटे। जब उनकी सवारी द्वारिका के मध्य मुख्य राजमार्ग से जा रही थी, तभी ढंढण मुनि ईर्यासमिति का पालन करते हुए, भूमि पर दृष्टि लगाये सामने से आते हुए दिखाई दिये। उनको आता हुआ देखकर श्रीकृष्ण ने तुरन्त अपने हाथी को रुकवाया और वे उससे नीचे उतरे। यह दृश्य देखकर सभी नगर-वासी लोग आश्चर्य से स्तम्भित रह गये और मन में विचारने लगे—अहा, तीन खण्ड के स्वामी होकर के भी धर्म के प्रति श्रद्धा और सन्तों के प्रति विनयभाव इनके रोम-रोम में समाया हुआ है। भाई, पहिले बड़े से बड़े राजा लोग भी गुरु को अपना पूज्य मानते थे और सामने से आता हुआ देख करके उनका चरण-वन्दन करते थे। परन्तु आज तो यह हाल है कि कोई दो मित्र रास्ते में बात करते हुए जा रहे हों और कोई मुनि सामने से आता हुआ दिख जाय, तो वे चुपचाप किनाराकशी करके निकल जावेंगे। परन्तु तीन खण्ड के स्वामी वासुदेव श्रीकृष्ण ने हाथी से उतर कर विधिपूर्वक वन्दना करके स्तवन करने लगे—

'ढंढण मुनि दर्शन की बलिहारी।
वारी हो वार हजारी ॥ ढंढण ॥
यादव कुल में उपजे तो भी, तप किया दुक्कर भारी।
ममता मारी लची सब मनकी उज्ज्वल करणी भारी ॥ ढंढण० ॥ १ ॥

ही उन्होने सब सन्त-सतियो के दर्शन किये। उस समय दिल्ली वाले स्थानक मे सुगालचन्दजी स्वामी विराजते थे। वे अकेले ही रहते थे। पहिले उनके पास तीन सन्त रहते थे, पर वे छोडकर चले गये थे। उनका न कोई धनी धोरी था और न उन्हे किसी से कुछ लेना-देना ही था। वे अपनी मस्ती मे रहते थे। जब वाडीलाल भाई उनके पास दर्शनार्थ पहुचे, तो उनका रग-ढग देखकर कहने लगे कि ये साधु तो बडे मस्त है। जब उन्होने बम्बई वापिस पहुचकर अपनी यात्रा की रिपोर्ट लिखी तो उसमे यह भी लिखा कि मैंने जोधपुर मे एक ऐसे मस्त साधु के दर्शन किये, जिनके पास कोई साधन नही था। वे पढे-लिखे नही थे। परन्तु अन्तरग मे त्यागभाव था। भाई, त्यागी के लिए विज्ञापन करने की आवश्यकता नही होती है। और न उनको किसी भी प्रकार के बाह्य प्रदर्शन की ही इच्छा रहती है। उनके त्याग की छाप तो मनुष्य के हृदय पर सूर्य की किरणो के समान स्वयमेव पड जाया करती है। किसी को कहने की आवश्यकता नही पडती है।

हा, तो श्रीकृष्णचन्द्र ने उत्तम-उत्तम शब्दो से उनकी स्तुति की और वन्दना करके राजमहल को चले गये। इधर ढढण मुनि भी अपने स्थान की ओर चल दिये। वही पर एक श्रीपति नाम के सेठ का महल था। वह यह सब देख रहा था। उसने सोचा कि ये सन्त अवश्य ही कोई चमत्कारी मालूम पडते है। तभी तो तीनखड के धनी श्रीकृष्ण ने हाथी से उतरकर इनकी वन्दना-स्तुति की है। यदि हम भी इनकी भक्ति करेंगे और भगवान के समान गुण-गान करेंगे तो हमारी भी स्वार्थ-सिद्धि हो जायगी। ऐसा विचार करके वह सेठ ढढण मुनि के आगे आकर उनके चरणो मे पड गया और कहने लगा— हे दीनबन्धु, हे दयालु, मुझे भी तारो। ढढण मुनि ने सोचा कि जब यह प्रार्थना कर रहा है, तो इसके यहा [illegible] लेना चाहिए। सेठ उन्हे अपने यहा ले गया। [illegible] स्वादिष्ट मोदक [illegible] । सेठ मोदक मे [illegible] — [illegible], [illegible] । ढढण मुनि ने अपनी [illegible] [illegible] है, [illegible] है। [illegible]

जैसा होवे, तो हमारे वाधा नही है। परन्तु हमे वोध नही है कि यहा पाप लग रहा है। और एक-एक कदम पर असख्यात जीवो की हिंसा हो रही है। ये शहर क्या सन्तो के रहने योग्य है? ऐसे शहरो मे चौमासा करना नही कल्पता है। परन्तु फिर भी हमारे साथी कहते हैं कि वहा भी हजारो श्रावक है। वहा नही जाने पर वे नाराज हो जावेगे। किन्तु मैं अपने इन साथियो से पूछता हू कि आपकी आत्मा तो नाराज नही होगी? परन्तु भाई, आपके मोह मे आकर यहा सयमरूपी रुपये के वारह आने और कही आठ आने ही रह जाते है। अव देखो न, कि साधु शहर की गलियो मे जा रहे हैं—कीचड मे पैर रखकर जाते है, तो सम्मूर्च्छिम जीवो के घात का दोष क्या नही लगता है? अवश्य लगता है।

तपोवल का चमत्कार

मेरे भाइयो, जो कहते है कि हम चौथे आरे के सत है—साधु है, तो क्या उनको जोधपुर की गलियो मे चलते हुए दोप नही लगता है? क्या वे आकाश-गामिनी विद्या से चलते है? मै एक वात तो अवश्य कहूगा—यद्यपि आप लोग नाराज हो जायेगे। परन्तु क्या करू? वास्तविक वात कहने का स्वभाव पडा हुआ है। वह यह कि आप लोग जहा होशियारी और चतुराई करते है, वहा तो पानी मे से फवार भी निकाल लेते है। परन्तु जव वोगे वनते हो, तव फिर पूरे ही वनते हो। यह आरा तो है पाचवा, और वना दिया चौथा। अव वताओ—चौथे आरे के भाव कहा से आयेगे? जैसा सहनन है, जैसी शक्ति है और जैसी प्रकृति है, वैसा ही काम चल रहा है। मैने अपने वचपन मे वृद्ध सन्तो को देखा है। उनमे कितने ही पचास, साठ और सत्तर वर्ष के दीक्षित थे। परन्तु उनके द्वारा यह सुना कि हमे आज तक सूठ का धागा भी लेने का काम नही पडा। आप लोगो मे से भी कितने ही पचास, साठ और सत्तर वर्ष के हो गये है। वताइये—आज से पहिले आपने कितने साधुओ के [illegible] [illegible] है? [illegible] जिन सन्तो के मल-मूत्र पसीना और पैर की धूल [illegible] [illegible] रोग दूर हो जाते थे, वे आज कहा है? परन्तु आज तो [illegible] [illegible] कि बिना [illegible] के उनका रोग ही नही मिटता है?

आजके श्रावक तो जरा से दुःख मे रोना रो देते हैं। परन्तु पहिले के नही रोते थे। वे सोचते थे कि ये तप-सयम मे है तो इन्हे मैला क्यो करे? और जब कोई श्रावक अधिक ही रोग-ग्रस्त हो जाता था, तब कही वह साधु सन्तो के पैरो के हाथ लगाते थे। तब सन्त पूछते थे कि भाई, क्या बात है? और उसका दुःख सुनकर सन्त कहते थे कि धर्म पर आस्था रखोगे तो सब शान्ति हो जायगी। जब सन्तो के ऐसे वचन निकल जाते, तब फिर किसी देवी-देवता के सामने जाने की आवश्यकता नही रहती थी। परन्तु अभी तो आप लोग गुरु महाराज के पास है और फिर यहा से उठकर पीर साहब, भैरु, भवानी और बाबा साहब के पास भी माल लूटने को चले जाते है। इसलिए कुछ भी नहीं होता है। जब हृदय मे धर्म पर और गुरु पर दृढ श्रद्धा ही नही, तब क्या होगा? फिर कहते हैं कि अरे, गुरु महाराज के पास तो कुछ नही है।

हा, तो उन ढढण मुनि के उन लड्डुओ को निर्दोष-रीति से परठा और वही प्रासुक भूमि पर कायोत्सर्ग करते हुए विचारने लगे – 'अहो पूर्वोपार्जित-कर्मों का क्षय करना कितना कठिन है। यह प्राणी पहिले मोह मे पडकर दुष्कृत करते हुए यह नही सोचता है कि इन दुष्कर्मों का फल एक न एक दिन मुझे ही भोगना पडेगा इस प्रकार विचार करते हुए उन्होने कर्मों का क्षय करने वाली विशुद्ध परिणामो की क्षपकश्रेणी पर चढना प्रारम्भ किया। शुक्ल-ध्यान प्रकट हुआ और अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही चारो घन-घाती कर्मों का क्षय करके अनन्त-ज्ञान और अनन्त-दर्शन के धारक केवली बन गये। तत्काल आकाश देव-दुन्दुभियो के शब्द से गूंज उठा।

भाई, जिन घनघाती कर्मों का क्षय बडी लम्बी तपस्या से भी नहीं होता, ढढण मुनि ने भूख-प्यास की वेदना को समभावो से सहकर अल्प समय मे ही उनका क्षय कर डाला। तपस्या तभी सफल होती है, जबकि उसे निश्छल और समभाव से किया जावे। जब साधक के हृदय मे यह दृढ विश्वास हो जाता है कि—

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम्॥

भी लोगो के आग्रह पर लाने मे कसर नही रखते थे। पर उस जमाने मे कोई टटा नही था। फिर भी लोग उनको शिथिलाचारी मानते थे। लोगो की दृष्टि मे ढीले दिखते हुए भी उनके परिणाम बहुत सरल और शुद्ध थे। एक दिन उन्होने लालचन्दजी खीवसरा से कहा—आज तो जलेबी खाने की मनमे आ गई है। उन्होने कहा—पधारिये। कदोई की दुकान पास मे ही थी। ज्यो ही महाराज दुकान के सामने पहुँचे तो कदोई उठकर खडा हुआ। उसने श्रद्धा से जलेबी वहराई और स्वामीजी लेकर स्थान पर आ गये। वे पूरे तीन पाव जलेबी खा गये। और ऊपर से पानी पी लिया। फिर उन्होने कहा—लालचन्दजी, अब तो मुझे सथारा करा दो। तब उन्होने कहा—महाराज, पाव-दो पाव और ले आता हू। परन्तु अभी सथारे का नाम क्यो लेते है? उन्होने कहा—नही, मुझे तो सथारा करा दो। लालचन्दजी ने बहुत समझाया, परन्तु वे नही माने। वहा और भी सन्त विराजते थे, अत लालचन्दजी उन्हे लिवा लाये। स्वामीजी ने उन सन्तो से कहा—मुझे सथारा कराओ। उन्होने भी बहुत कुछ समझाया। परन्तु वे नही माने। अन्त मे सथारा पचखा दिया। उनके सेतीस दिन का सथारा आया। इस प्रकार उन्होने धन्य-धन्य होकर काल किया। उनमे मायाचारीपना नही था। वे किसी भी बात को छिपाते नही थे। परन्तु आज हम लोगो के लक्षण कैसे है कि दिखाते है—अच्छा माल और चेला-चेली बना रहे है। पुराने सन्त तपस्या के धनी थे और हृदय मे मैल नही रखते थे। परन्तु भाई, आज तुम्हारे प्रपचो मे फसकर यह दोष लगाना पडता है। आज छोटे गावो मे रहने पर सयम जितना ठीक पलता है, वैसा शहर मे रहने पर नही पलता है। दिसावर मे लोग आते है और कहते है—महाराज, उधर पधारो। कितने ही तो रोते भी नजर आते है। परन्तु मै कहता हू कि क्या मारवाड सूना है। यदि मारवाड छूटा तो सयम [illegible] लगे कि मारवाड जाने और आठ [illegible]। [illegible] कहते है कि तुम यहा रहो और न [illegible] रहो। [illegible] मारवाड का [illegible] बाहिर [illegible] की इच्छा ही नही होती है। [illegible] आहार-पानी शुद्ध मिलता है। इसलिए [illegible] [illegible] भी, [illegible] हाथ-पाव दुख भी [illegible]

८ | संयम-साधना

भगवान की वाणी मे अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वचनरूपी मणि-रत्न भरे हुए है। यदि किसी को जीवन मे एक-आध मणि भी मिल जाय तो उस गृहस्थ का सारा कारोबार सफल हो जाता है। फिर जिसे अनेक मणिया मिल जाये, तब तो उसका कहना ही क्या है? मणि तो सासारिक कार्यों का साधक भौतिक या पौद्गलिक पदार्थ है। उससे प्रभु की वचनावलि को मणियो की उपमा दी जा रही है। परन्तु भाई, कहा तो ये जडमणि और कहा भगवान के वचनरूप चेतनमणि? दोनो मे कितना महान् अन्तर है? जितना कि जग प्रकाशक सूर्य और टिमटिमाते दीपक के प्रकाश मे है? जो पौद्गलिक-मणि है, वह तो इहलौकिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है, किन्तु प्रभु के वचन भव-भव की अनन्त तृष्णाओ को शान्त करते है।

धर्म के लक्षण

भगवान ने धर्म के दस लक्षण कहे है। यथा—

खंती, (मुत्ती), अज्जवे, मद्दवे, (लाघवे), सच्चे, सउच्चे, सजमे, तवे, चाए, आकिंचणे, बंभचेरे य।'

क्षमा (क्षांति) आर्जव, (लाघव) मार्दव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, [illegible] और [illegible]। [illegible] दस [illegible]। [illegible], [illegible] 'धम्म [illegible]-

कहलाते है। जो उक्त सयम को पूर्णरूप से धारण करते है, उनके सयम को सकल-सयम कहते है। इसके धारक साधु कहलाते है।

श्रावक के सर्व कार्य आरम्भ-समारम्भ मय होते हैं, अत वह हिंसादि पाचो पापो का सर्वथा त्याग नही कर सकता है। इसलिए उसे उन पापो के स्थूलरूप से त्याग करने का उपदेश दिया गया है। हिंसा दो प्रकार की होती है—त्रसहिंसा- और स्थावर-हिंसा। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय प्राणियो को त्रस कहते है। इन जीवो की हिंसा करने को स्थूल-हिंसा या त्रस-हिंसा कहते है। श्रावक सकल्पपूर्वक, कृत से, कारित से और अनुमोदन से मन-वचन-काय के द्वारा त्रस-हिंसा का त्याग करता है। परन्तु वह स्थावर-हिंसा अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन पाच प्रकार के स्थावर जीवो की हिंसा का त्याग करने मे असमर्थ रहता है। क्योकि खान-पान आदि सभी क्रियाओ मे स्थावर जीवो की हिंसा अनिवार्यरूप से होती ही है। गृहस्थ इनकी हिंसा से बच नही सकता। इस प्रकार त्रस-हिंसा के त्याग को और स्थावर हिंसा के त्याग नही करने को स्थूल प्राणातिपात विरमण नाम का व्रत कहते है।

जैसा कि कहा है—

> सकल्पात् कृत-कारित मननाद्योग त्रयस्य चरसत्वान्।
> न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमण निपुणा.॥

कितने ही श्रावक इस स्थूलहिंसा का त्याग कृत और कारित इन दो भगो से ही करते है, उनके अनुमोदना का त्याग नही होता। इसका कारण यह है कि घर मे रहते हुए ऐसे अनेक अवसर आते है, जब त्रस-जीवो के हिंसा करने की अनुमोदना इच्छा नही होने पर भी अनायास हो ही जाती है। जैसे आपका पुत्र, या भाई व्यापार आदि के लिए कही बाहिर गया। मार्ग मे उसे चोर-डाकू मिल गए और वे आपके पुत्र या भाई को पकड़ कर ले जाने लगे। इतने मे [illegible] [illegible] [illegible] और उसने [illegible] को मार दिया और आपके पुत्र या भाई को [illegible]। जब यह समाचार आपको मिला, [illegible] [illegible] [illegible]

सामायिक के समय समाचार मिला कि आपका पोता मकान की ऊपर मंजिल से गिर पड़ा है और उसे संगीन चोट आई है, तो सुनकर दिल मे दर्द होता ही है। इन सब कारणो से भगवान ने व्रत नियम को लेते समय 'तिविहेण, दुविहेण' आदि कहकर श्रावक को खुला रखा कि जिसकी जैसी परिस्थिति हो, वह उसी प्रकार का नियम ग्रहण करे।

सत्य की मर्यादा

श्रावक को जिस प्रकार हिंसा पापके त्याग का उपदेश दिया गया है, उसी प्रकार झूठ पाप के लिए भी त्याग का विधान किया है। इस दूसरे व्रत के लिए भी कहा है कि—

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदि।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावाद - वैरमणम्॥

जो स्थूल झूठ न तो स्वय बोलता है और न दूसरे से ही बुलवाता है, उसे स्थूल मृषावादविरमण कहते है। जिस बात को कहने से लोक व्यवहार मे मनुष्य झूठा कहलाता है और जिसके बोलने से बाजार मे मनुष्य की साख उड जाती है, ऐसी झूठ को बोलने का त्याग श्रावक को अवश्य करना चाहिए। यह मोटी झूठ अनेक प्रकार की होती है। यथा—

'कन्नालिय गोवालिय भोमालिय थापणमोसो कूडसाख'।

अर्थात् किसी की निर्दोष कन्या को दोष लगाकर अपने साथ विवाह करने का उपक्रम करना, किसी दूसरे की भूमि को, और गाय-भैंस आदि पशुओं के लिए, अपनी भूमि से सम्बद्ध होने से उसके कुछ भाग को अपनी बतलाना, दूसरे की धरोहर का निषेध करना, कूट साक्षी भरना, नकली दस्तावेज बना कर उन्हें असली बतलाना आदि स्थूल झूठ कहलाते है। इनके बोलने से लोक मे प्रतिष्ठा गिरती है और राज्य-सरकार भी दण्डित करती है। इसीलिए ऐसी मोटी झूठ [illegible] त्याग करना स्थूल-मृषावादविरमण नाम का दूसरा अणुव्रत [illegible] [illegible]

लिए आया हू, सो इसे स्वीकार करो। और यदि मास खाने की ही इच्छा हो तो मैं आपके सामने खडा हूं, सहर्ष मुझे स्वीकार करो। कहते है कि वह शेर पिंजडे मे से निकला, उसने थाल की भोजन-सामग्री को सूघा और दीवान साहब की ओर-जो उस समय कायोत्सर्ग मुद्रा मे प्रभु का नाम जपते हुए नासाग्र दृष्टि रखे खडे थे, देखता हुआ वापिस पिंजडे मे चला गया। इस समय यह तमासा देखने के लिए जो सैकडो लोग वहा खडे थे—उन्होने यह चमत्कार देखकर दीवान साहब के जय-जयकार से आकाश को गुजा दिया। भाइयो, सत्यव्रती और मृदुभाषी के मनुष्य के वचन-सिद्धि हो जाती है। वे जिससे जैसा भी कह देवे, वह कार्य वैसा ही हो जायगा। वचन सिद्धि वालो के अनेक उदाहरण शास्त्रो मे उपलब्ध है। ऋषियो को जो शाप और अनुग्रह की शक्ति प्राप्त होती है, वह भी वचन सिद्धि का ही प्रभाव है। इसलिए हमे सदा ही अपने वचनो पर सयम रखना चाहिए। यदि यह एक भी व्रत आपने शुद्ध हृदय मे पाल लिया तो ससार से बेडा पार होने मे देर नही लगेगी।

अचौर्य-व्रत

श्रावक का तीसरा व्रत है अचौर्याणुव्रत। बिना दिये किसी की वस्तु के लेने को चोरी कहते है। स्थूल चोरी के त्याग करने को अचौर्याणुव्रत कहते है। शास्त्रकारो ने कहा है—

निहित वा पतित वा सुविस्मृत वा परस्वमविसृष्टम् ।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृश चौर्यादुपारमणम् ॥

रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई और बिना दी हुई वस्तु को जो न तो स्वय लेता है और न उठाकर दूसरे को देता है। उसे स्थूल चोरी का त्याग कहते है।

भाई, धन तो मनुष्यो का ग्यारहवा बाह्य प्राण है। जिसका धन चुराया जाता है, उसे कितना दुःख होता है यह वही जानता है। इसी कारण भगवान ने [illegible] धन को प्राण [illegible] है। कहा है—

अर्थानाम य एते प्राणा बाह्यचरा पुसाम् ।
हरति स तस्य प्राणान् यो यस्य जनो हरत्यर्थान् ॥

ही करता है। यहा तक कि वह वेश्या का नृत्य भी नहीं देखता है। वह अप्राकृतिक मैथुन का भी त्यागी होता है। जो पुरुष पर-स्त्री का और स्त्री पर-पुरुष का मन वचन काम से त्याग करता है। उसका अद्भुत प्रभाव शास्त्रो मे बतलाया गया है। देखो—सुदर्शन सेठ के इसी व्रत के प्रभाव से शूली का सिंहासन हो गया और सीता के शील के प्रताप से अग्निकुण्ड सरोवर रूप से परिणत हो गया। अत गृहस्थ स्त्री और पुरुष दोनो को ही इस ब्रह्मचर्याणुव्रत को धारण करना चाहिए। जैसा कि कहा है—

> नतु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
> सा परदारनिवृत्तिः स्वदार - सन्तोष नामापि॥

जो पर स्त्रियो के पास पाप के भयसे न स्वय जाता है और न दूसरो को भेजता है, उसे परदारनिवृत्ति या स्वदार-सन्तोष नामक अणुव्रत कहते है। इसी का नाम ब्रह्मचर्याणुव्रत है। स्त्रियो के इस व्रत का नाम स्वपति सन्तोष, पातिव्रत्य या शीलव्रत है। गृहस्थ स्त्री और पुरुष को इस व्रत का पालन करना देश सयम है।

परिग्रह की मर्यादा

पाचवा परिग्रह परिमाण नाम का अणुव्रत है। इसका स्वरूप इस प्रकार से कहा गया है—

> धन-धान्यादि ग्रन्थ परिमाय ततोऽधिकेसु नि.स्पृहता।
> परिमित परिग्रह स्यादिच्छापरिमाण नामापि॥

धन, धान्य, [illegible], वस्तु, सोना, चादी, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन आदि जितना भी चेतन और अचेतन परिग्रह है, उनका अपनी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार परिमाण करके उससे अधिक मे निःस्पृहभाव रखना परिग्रह परिमाण-नामक अणुव्रत है। इसी का दूसरा नाम इच्छा परिमाणव्रत है।

इच्छाओ का सयम

[illegible] मनुष्य [illegible] शान्ति [illegible] है? [illegible] उत्तर [illegible] है कि [illegible]
[illegible] मनुष्य [illegible]

सयम । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन छह काया के जीवो की रक्षा करना प्राणिसयम है और पाचो इन्द्रियो के विषयो का त्याग करना अर्थात् अपनी इन्द्रियो पर नियत्रण रखना इन्द्रिय सयम होता है । इन दोनो भेदो के विस्तार से शास्त्रो मे सत्रह प्रकार के सयम बतलाये गये है ।

साधु-जीवन मे सयम का स्वरूप

साधु पृथ्वीकाय का पूर्ण सयम पालता है । वह न कभी पृथ्वी को खोदता है, दूसरे से खुदवाता है और न खोदनेवाले की अनुमोदना ही करता है । इसी प्रकार जलकाय और अग्निकाय का भी वह किसी प्रकार का आरम्भ-समारम्भ ही करता है, न कराता है और न अनुमोदना ही करता है । वायुकाय की भी विराधना का त्यागी होता है, क्योकि उसने महाव्रतो को स्वीकारते समय उसके भी त्रियोग-त्रिकरण से विराधना का त्याग किया है ।

अभी एक भाई आये । वे कहने लगे कि हम एक गाव मे गये तो वहा देखा कि हर एक मुनिराज के अलग-अलग पखे लगे हुये है । तब मैने कहा कि जो सयम पालता है, उसको तो पखे की कोई आवश्यकता नही है । हा, जो सयम को नही पालता है, वह एक नही, चार पखे लगा लेवे तो उसे कौन मना करता है । परन्तु पखे की हवा खानेवाले साधुओ से पूछो कि वायुकाय का सयम किसे कहते है ? वायुकाय के सयम का अर्थ है कि वायुकाय के जीवो की हिंसा नही करना । भाई, जब पखा चलेगा, तब वहा क्या वायुकाय के जीवो की विराधना नही होगी ? अवश्य होगी । परन्तु पखे की हवा खानेवाले अपने दोष को छिपाने के लिए कहते है कि गृहस्थ का मकान है और पखे को गृहस्थ चलाते है । भाई, उनसे पूछो कि जहा तुम रहते हो, वहा गृहस्थ का क्या काम है ? वहा तो सन्तो का काम है । इसी प्रकार [illegible] ही साधु लाउडस्पीकर पर बोलने लगे है । वे कहते है कि [illegible] गृहस्थ [illegible] है, हम थोडे ही रखते है । अब भाई, मै पूछता हू कि यदि [illegible] नही आवे तो फिर क्या वे लगायेगे ? इस प्रकार [illegible] [illegible], [illegible] फिर किसी बात की मर्यादा नही रहेगी । [illegible]— [illegible] ? गृहस्थो के लिए, या साधुओ के लिए ?

क्या वहा पर राजा, गुलाम आदि है ? नही है। परन्तु मारो मारो कहने से मारने की क्रिया का पाप लगा, या नही ? लगा। यही अजीव का असयम है और ऐसे समय वैसे शब्द नही बोलना और चित्र आदि को नही फाडना ही अजीव सयम है। मार्ग मे चलते समय पत्थर आदि की ठोकर लग जाने पर उसे गाली आदि देना भी अजीव का असयम है। ऊपर से लकडी-पत्थर आदि गिरने से चोट लग जाने पर उसे फेकते है और गाली देते है, तो यह भी अजीव का असयम है। अजीव सयम का मतलब है कि अजीव पर भी गुस्सा नही करना, उसे गाली नही देना और उसकी किसी भी प्रकार की विराधना नही करना।

जो साधु सत्रह प्रकार के सयम मे अहर्निश सावधानी पूर्वक दृढ रहते है, उनको उस सयम की रक्षा के लिए पाच समितियो का भी पालन करना पडता है। पहिली ईर्या समिति है। इसका अर्थ है कि सूर्य का जब प्रकाश सर्वत्र भली भाति फैल गया हो, मार्ग लोगो के गमनागमन से अचित हो गया हो, तब साधु नासाग्र दृष्टि रखकर चार हाथ भूमि को नेत्रो से भली-भाति देखता-शोधता हुआ चले। यदि भूमि पर गोबर, भूसा का ढेर, घास आदि पडा हो, तो उसके ऊपर पैर रखता हुआ नही चले। क्योकि वहा पर पैर रखने से त्रस जीवो की हिंसा की सम्भावना रहती है। यह समिति प्रधान तथा अहिसा व्रत की रक्षा के लिए ही कही गई है। रात्रि मे गमनागमन का निषेध भी इसीलिए किया गया है, कि अन्धकार मे जीव दिखाई नही देते है। साधु को रात्रि मे मल-मूत्रादि की बाधा के समय ही ओघे से भूमि को प्रमार्जन करते हुए अति सीमित स्थान मे ही गमनागमन करना कल्पता है, अन्यथा नही।

वाणी-विवेक

दूसरी भाषा समिति है। यह सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए पालन की जाती है। यद्यपि साधु ने सत्य महाव्रत को स्वीकार करते हुए सर्व प्रकार के असत्य भाषण का परित्याग कर दिया है, तथापि उसे कर्कश, मर्मच्छेदक, [illegible] शब्द भी बोलने की मनाई की गई है। साधु की [illegible] [illegible] कहा गया है कि—

लीपे हुए आगन मे भोजन लेने को न जावे । वन्द-मकान के किवाड खोलकर भीतर भिक्षा के लिए न जावे । अन्धेरे कोठे आदि मे न जावे । दूसरे की प्रशसा करते हुए याचना न करे । यदि पानी वरस रहा हो, कुहरा गिर रहा हो, झझावायु चल रही हो और मार्ग सम्मूच्छिम जीवो से व्याप्त हो, तो भिक्षा लेने न जावे ।

साधु गोचरी मे कैसे आहार को लेवे ? जो आहार साधु के निमित्त न वना हो, किन्तु गृहस्थ ने अपने लिए ही वनाया हो, खरीदकर साधु के लिए न लाया गया, शय्यातर के घर का न हो, सामने न लाया गया हो । जो आहार सर्व दोपो से रहित हो, उसे ही लेवे । आहार-सम्वन्धी सर्वदोप १०६ वतलाये गये है, उनको टाल करके ही प्रासुक आहार-पान को ग्रहण करे । जिस साधु को इन सव दोपो का पूरा ज्ञान हो, उसे ही गोचरी के लिए जाना चाहिए । परन्तु आज तो सन्त लोगो ने आहार-पानी लाने के लिए चेलो के जिम्मे यह कार्य सौप रखा है, जिन्हे एपणा के दोपो का ज्ञान ही नही है । पहिले के सन्त जो सर्ववातो के भलीभाति जानकार होते थे, वे ही स्वय गोचरी लेने को जाते थे । जिस साधु को सर्वदोपो का ज्ञान नही है, वह यदि गृहस्थ के घर मे गोचरी के लेते समय स्नानघर, शौचघर आदि की ओर दृष्टिपात करेगा, तो वह अपमान का पात्र हो जायगा । इसलिए जैसे गाय जगल मे जव घास चरने को जाती है, तव इधर-उधर वन शोभा को नही देखती है किन्तु नीची दृष्टि किये घास चरती हुई चली जाती है । इसी प्रकार साधु को भी आहार-पान के लाने के समय इधर-उधर न देखकर अपने लिए कल्पे, ऐसे आहार-पान को लेने के ऊपर ही दृष्टि रखनी चाहिए । और भौरे के समान गृहस्थ को पीडा न हो—इस रीति से अनेक घरो से थोडी-थोडी भिक्षा लाना चाहिए । तभी साधु का सयम पल सकेगा ।

भगवान साधु को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विचार करके आहार-पान [illegible] का निर्देश किया है । इसलिए जिस देश मे जिस काल मे, आहार-[illegible] भगवान का [illegible]

हो, ऐसी भूमि पर मल-मूत्रादि के परठने का भगवान ने निषेध किया है। आज हम जब इस प्रतिष्ठापन समिति पर विचार करते हैं, तब साधु-सन्त तो शहरो मे पैर भी नही रख सकते है। इस समिति के द्वारा जीवो की रक्षा होती है, अत यह भी अहिंसा महाव्रत का पोषण करते है।

गुप्ति

साधु को सयम की रक्षा करने के लिए अपने मन को वश मे रखना चाहिए। यह मनोगुप्ति है। वचन को वश मे रखे, यह वचन गुप्ति है और काय अर्थात् शरीर को वश मे रखे, यह कायगुप्ति है। पाचो समितिया और तीनो गुप्तियो को भगवान ने अष्टप्रवचन माता कहा है। जैसे माता अपने पुत्र की भली भाति रक्षा करती है, उसी प्रकार ये आठो प्रवचन माताए सयम की भली भाति रक्षा करती है। इसलिए साधु को अपने सयम की रक्षा के लिए इन पाचो समितियो और तीनो गुप्तियो का सदा पालन करना चाहिए।

भाइयो, अभी जो आपके सामने सयम धर्म का निरूपण किया। उसी को महाकवि रइधु ने इस प्रकार कहा है—

सजमु पचिदिय दडणेण, सजमु जि कसाय विहडणेण।
सजमु दुद्धर तव धारणेण, सजमु रस-चाय वियारणेण॥
सजमु उववास वियम्भणेण, सजमु मण पसरहु थम्भणेण।
सजमु गुरुकाय किलेसणेण, सजमु परिगहगिह चायणेण॥

अर्थात् पाचो इन्द्रियो को वश मे रखने से सयम होता है, क्रोधादि कषायो को जीतने से सयम होता है, दुर्धर तप के धारण करने से सयम होता है और छह प्रकार के रसो के त्यागने से सयम होता है। उपवासो के करने से सयम होता है, मन के प्रसार को थामने से सयम होता है। भारी काय-क्लेश को सहन करने से सयम होता है और परिग्रह रूपी ग्रह के परित्याग से सयम होता है। इसलिए भगवान ने सभी पाप परिग्रह मूलक है। और भी कहा है—

सजमु तस-थावर रक्खणेण, सजमु तिणि जोय णियत्तणेण।
सजमु गुत्तित्तय परिपालणेण, सजमु अट्ठमयह चयणेण॥

चाहिए। जैनी के लिए तीन बातो का तो कम से कम त्याग होना ही चाहिए। पहली बात है— मद्य, मास और मधु का त्याग। दूसरी रात्रि भोजन का त्याग। और तीसरी अनछने जल को पीने से कार्यों मे त्रस जीवो की हिंसा होती है। और गृहस्थ के इसका त्याग करने पर ही देश सयम का पालन हो सकेगा। जैन कुलो मे अभी कुछ समय पूर्व तक उक्त तीनो बातो का त्याग चला आ रहा था। अब केवल मद्य-मास का त्याग बचा है। अधिकतर जैनी रात्रिको खाने लगे है और अनछना पानी पीने लगे है। भाइयो, जो रात्रि भोजन के त्यागी है और छान करके पानी पीते है, वे अनेक प्रकार के भयकर रोगो से बचे रहते है। तथा त्रस जीवो की रक्षा होने से सहज मे ही उनके सयम का पालन हो जाता है। आपको छानकर पानी पीते हुए देखकर, तथा दिन मे ही भोजन करते देखकर दूसरे लोगो पर आपकी बहुत अच्छी छाप पडती है और लोग आपको अहिंसा धर्म का परिपालक सहज मे ही समझ लेते है। इसमे आपके कुल की महत्ता भी बढती है। अत कम से कम उक्त तीन बातो का नियम तो प्रत्येक जैनी को लेना ही चाहिए।

भाई, ऊच और नीच कुल के आचार-विचार मे यही तो अन्तर है, आर्य और म्लेच्छ मे यही अन्तर है कि अनार्य पुरुष मासभोजी, निशाभोजी मद्यपायी और अनछने जलको पीते है। किन्तु आर्य पुरुष शाक-अन्नभोजी, फलाहारी, दिवाभोजी और जल छान कर पीते है। हम जिस उच्चकुल मे उत्पन्न हुए है, उसमे उक्त तीनो बातो का त्याग परम्परा से चला आ रहा था। किन्तु आज विदेशी सभ्यता के प्रभाव से हमारे समाज मे जो उक्त तीनो कार्यो मे हीनता दृष्टि गोचर होने लगी है। उसे दूर कर पूर्व परम्परा का तो पालन करना ही रहना चाहिए गृहस्थ के इतना सयम तो होना ही चाहिए।

वि० स० २०२० आषाढ वदि [illegible]

[illegible], [illegible]पुर,

●●

का कार्य किया है जनता की भलाई की है, उसी के कारण लोग उसके दर्शन करने और भाषण सुनने के लिए दौडे हुए जाते है। वह महापुरुष चाहे परिचित स्थान पर जावे अथवा अपरिचित स्थान पर जावे, उसका सर्वत्र सम्मान होता है और सब उसकी ओर स्नेहमयी दृष्टि से देखते है। ऐसे व्यक्ति का ही आना और जाना सार्थक है। अन्यथा रेलो और मोटरो से कितने लोग आते और चले जाते है, उनका क्या आपको पता है ? अरे, ऐसे आने-जाने वालो का पता तो उनके सगे सम्बन्धियो को भी नही चल पाता है। तब सारे ससार को जानकारी कौन रख सकता है ? परन्तु एक बात निश्चित है कि जिसके आने और जाने की याद दुनिया रखती है तो आपको भी मानना पड़ेगा कि उस व्यक्ति ने कुछ महान् कार्य किया है। भाई, ससार मे आकर दो प्रकार की करनी करने वालो के नाम अमर रहते है—एक तो भली करनी करने वालो के और दूसरी बुरी करनी करने वालो के। और इन दोनो जाति के लोगो की याद दुनिया के लोग रखते है। कहा भी है—

> सब काहू की कहत है, भली बुरी ससार ।
> दुर्योधन की दुष्टता, विक्रम को उपकार ॥

दोनो को ही याद किया जाता है

भाई, इस दुनिया मे कुछ छिपा नही है। उसे सबके भले-बुरे का ज्ञान है। भले-बुरे व्यक्तियो के भले-बुरे कामो को उनके समय के लोग तो जानते ही थे। परन्तु हजारो वर्ष बीत जाने के बाद आज भी लोग उनको भूले नही है। देखो—जैन सिद्धान्त के हिसाब से दुर्योधन को पैदा हुए साढे छियासी हजार वर्ष बीत गये। परन्तु आज यदि किसी के कोई कपूत पैदा होता है, तो लोग कहते है कि दुर्योधन जन्मा है। दूसरी ओर विक्रमादित्य राजा को मरे हुए दो हजार [illegible] वर्ष हो गये है, परन्तु उसको भी दुनिया जानती है। यह न दुर्योधन का [illegible] है और न विक्रम का [illegible] है। और न यह [illegible] [illegible] है। परन्तु राम, [illegible] और विक्रम की याद [illegible] [illegible] है। [illegible], [illegible] और दुर्योधन की याद [illegible] [illegible] है।

वर्षों के वाद कौन जानेगा कि यह मकान उन्होने वनवाया था। भाई, मकान से हमारा नाम अमर नही होता है। इसी प्रकार वडे ठाठ-वाट से शादी आदि करने पर भी नाम अमर नही होता है। ऐसे लोगो की याद दुनिया मे अधिक से अधिक उनके जीवित रहने तक रहती है। कुछ लोग समझते हैं कि वढिया वस्त्राभूपण पहिनने और चटक-मटक से रहने पर दुनिया हमारी याद करेगी ? पर क्या दुनिया मे ऐसे लोगो की स्मृति कायम रहती है ? नही रहती। हा जिन लोगो ने दूसरो लोगो का भरपूर उपकार किया है, उन्हे हर प्रकार से सुख और शान्ति पहुचाई है और उन्हे सुख का मार्ग वताया है तो ऐसे लोगो को ससार सदा याद रखता आया है और आगे भी रखेगा। तथा कहेगा कि अमुक समय मे हमारे यहा अमुक व्यक्ति ऐसा हो गया है जिसने अपने देश, जाति और धर्म के लिए अमुक महान् कार्य किया है। इसलिए आप लोग ऐसे ही उत्तम कार्य करे जिससे आप भी आगे सदा लोगो से याद किये जावे।

ससार मे प्रशसा कैसे कार्य करने से होती है, वे कार्य आप लोगो से छिपे हुए नही हैं। तथा वदनामी भी कैसे काम करने से होती है, यह भी सव जानते हैं। परन्तु भाई, आप लोग जानते हुए भी अनजान वने हुए है। सोते हुए मनुष्य को जगाया जा सकता है। किन्तु जो जागते हुए भी सोने का वहानाकर आख वन्द करके पडे है, उन्हे कौन जगा सकता है ? ऐसे लोगो के हित के लिए जो भी वात कही जायगी, उसे वे मजाक वनाकर उडा देगे। वल्कि उसे उलटे रूप मे रखकर आपको समझाने का प्रयत्न करेगे।

बुद्धि को सन्मार्ग को ओर मोडो !

अभी तीन-चार वर्ष पहिले की वात है, जव पचवर्षीय चुनाव होने वाला था, उससे एक मास पूर्व गोरक्षण का आन्दोलन चल गया था। उस समय एक गाव का सरपच और वहा का निकाय-अधिकारी दोनो मेरे पास वैठे हुए थे। मैने उनसे कहा—भाई, गायो के प्रति वडा अन्याय हो रहा है। जो जो लोग गोरक्षा का आन्दोलन कर रहे है, उसमे आप लोगो को कुछ सहायक वनना चाहिए। मेरी वात सुनके वे हसे। वोला—महाराज साहव, यह आप क्या कह रहे है ? यदि ये गाये ही सारी वनी रह जावे तो देश दिवालिया हो

ऊपर जाने का ही है। परन्तु जब मनुष्य के हृदय मे धर्म के प्रति आस्था ही उत्पन्न न हो तो वह कैसे ऊचे की ओर चढेगा। आज तो ऐसे कुतर्कों को सुन कर धर्म के प्रति लोगो की भावना ही ढीली पडती जा रही है।

धर्म के बिना सुख नहीं

भाइयो, मैं आपसे पूछता हू कि क्या आप लोग धर्म की भावना से नीचे गिरकर सुख की नीद सो सकेगे ? कभी नहीं। फिर तो दु ख की नींद मे ही गिरना पडेगा। क्योंकि काल तो सिर पर ही घूम रहा है। सूत्रकृताग सूत्र मे कहा गया है—

> **गब्भ मुज्झति बूया बूयाणा, नरा परा पंच सिया कुमारा।**
> **जोवणगगा मज्झिमा थेर गाय, चूयति आयुखयं पलाण ॥१॥**

भगवान ने कहा है—हे प्राणियो, सोचो तो सही, जरा विचार तो करो—तुम्हारे साथ मे यह काल किस प्रकार से लगा हुआ है ? कई जीव तो गर्भ मे आकरके ही मर जाते है। नौ लाख सन्नी जीव एक साथ गर्भ मे आते है, तो क्या सब जीते ह ? एक, दो तीन, और बहुत हुआ तो चार जीते है। शेष सब तो मर ही जाते है। कितने ही तो बुद्बुद के रूप मे ही समाप्त हो जाते है। कितने ही गर्भ स्राव से मर जाते है, कितने ही गर्भ से निकलते हुए मर जाते हैं। कितने ही बालपन मे, कितने ही कुमारपन मे और कितने ही जवानी मे मर जाते है। पूरी आयु तक तो बहुत कम लोग जीते है। जब यह जीव गर्भ मे आया है और जब तक भी जीवित रहता है, तब तक यह काल तो तेरे पीछे ही घूम रहा है। इसलिए मानव को सबोधन करते हुए ज्ञानी जन कहते है कि—

> **मानव है तो मान जा, मत कर इतनी मरोड।**
> **तारे तनक नरको—लाग रही घुड-दौड ॥२॥**

यदि तू मानव है, समझदार है तो भाई, मरोड त्याग [illegible] दे कि मेरी [illegible] है [illegible] परिवार [illegible] है और मेरे [illegible] श्रीमन्त भाई है। [illegible] कर सकता है ? इस मरोड को छोड दे। यह मानवता

भूमि मे आना ही पडेगा । इसका हे मनुष्य, तू क्यो नही विचार करता है? और भी देख--जब मनुष्य सोता है, तब मरे हुए के समान लगता है और यह श्वास जो प्रति समय बाहिर आती और जाती है, इसका क्या भरोसा है कि यह सदा स्थिर बनी रहेगी । जैसे कोई छिपा हुआ जीव अवसर पाते ही अवश्य भागेगा । ऐसे ही यह श्वासा भी एक दिन सदा के लिए भाग जायगी । अरे, जरा तो विचार कर कि आज तक कही कोई कभी यम से बच सका है? हा, एक वही पुरुष बचेगा जो सम्यक् ज्ञानरूपी अमृत पीकर अमरपद पालेगा । इसलिए दौलतराम भव्य जीवो को सम्बोधन करके कहते है कि भाईयो, आप इस सम्यग्ज्ञानरूप अमृत का पान करो । पता नही, यह यम आ करके अपने को दबा लेवे । इसलिए आत्महित का शीघ्र प्रयत्न कर ।

मनुष्य सोचता है कि अभी जीवन बहुत शेष है, इसलिए आगे धर्म-साधन कर लेगे । उनको सम्बोधन करते हुए सन्त कहते है—

कई चाल्या, कई चालसी; केता चालण हारोरे,
न गिणे वार कुवारो रे-चाल्यो-जाय ससारो-रे अबतो ज्ञान विचारोरे ।
कोण थारो परिवारोरे, मेलो विघरनवारोरे, अपनि आप उधारोरे,
सारो झूठो ससारोरे— सहजा नदी रे आत्तमा ॥ १ ॥

अरे भाई, कितने तो चले गये है और कितने ही जाने वाले है । आप जब कही बाहिर जाने को तैयार होते है, तब शुभ मुहूर्त देखते है, उत्तम नक्षत्र, तिथि और वार देखते है और देखते है कि कालवासा तो सामने नही है । भद्रा और व्यतिपात योग तो नही है, क्षयतिथि तो नही है । पचक तो नही है । इनका सबका विचार करके आगे पैर रखते हो । परन्तु जब मौत आती है, तब उसका भी कोई मुहूर्त है क्या ? क्या कभी किसी ने देखा है कि मै इस मुहूर्त मे मरूगा । मौत आने का कोई मुहूर्त नही है । दुनिया कहती है कि [illegible] है और जन्म [illegible] है । [illegible] जब [illegible] आता है, उसको रोकने वाला कोई नही है । भाई, इस जन्म मरण का नाम ही ससार है । 'ससरतीति ससार',

मे डाला गया एक-एक ग्रास भी कुछ दिनो मे सडकर आप सबको असह्य पीडा कारक बन रहा है, तब मनुष्य के मल-मूत्रमय इस शरीर मे कैसा भडार भरा होगा और वह कितना दुर्गन्धित और दु खदायी होगा ? इसका तो जरा विचार करो। यह शरीर कितना घृणित और नि सार है। इस पुतली मे मैंने प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन डाला है और ऊपर से कुल्ला का पानी डाला है। जब इस नकली पुतली की दुर्गन्ध आप लोग सहन नही कर सकते है, तब इस असली शरीर की जिसमे कि प्रतिदिन सत्ताईस-सत्ताईस ग्रास और भर-पूर पानी पहुचता है, उसकी दुर्गन्ध को क्या सहन कर सकेंगे ? मल्ली भगवती के इतना कहते ही सब राजाओ की आखे खुल गई। फिर—

> पुतली देख छउ नृप मोह्या, अवसर विचारी—
> ढक्कन काढ लियो पुतली को, भभक्यां अनवारी ॥१॥
> मल्ली जिन बाल ब्रह्मचारी ॥ टेर ॥
> दुस्सह दुर्गंधि सही न जावे—उठ्या नृप हारी—
> तब उपदेश दियो श्रीमुख से, मोह दशा टारी ॥२॥
> महा-असार उदारिक देही, पुतली अति प्यारी—
> सगकिया पट के भवभव मे, नारी नरक क्यारी ॥३॥

मल्ली भगवती ने कहा—आप लोग इस शरीर के उपादान कारणो पर तो विचार करे कि यह माता-पिता के अशुचि-रज और वीर्य के सयोग से उत्पन्न हुआ है, रक्त, मज्जा आदि अपवित्र वस्तुओ से भरा हुआ है, इसके नवो द्वारो से अति घिनावनी वस्तुए सदा बहती रहती है। आश्चर्य है कि आप लोग ऐसे घृणित शरीर पर मोहित हो रहे है। यदि शरीर के भीतर की ये वस्तुए बाहिर निकल आवें तो आप लोग देखना भी पसन्द नही करेंगे। ज्ञानी पुरुष शरीर के इस ऊपरी चर्म पर न लुभाकर इसके अन्तस्थ आत्माराम मे प्रीति करते है। उसमे प्रीति ही सच्ची कल्याणकारिणी है। आप लोगो की मेरे प्रति इतनी अधिक आसक्ति क्यो है ? क्या इसका भी विचार किया है ?

हम लोग इससे पूर्व के तीसरे भव मे परस्पर मित्र थे। आप सबने मेरे साथ दीक्षा ली थी। [illegible]

हे सुभगे, यदि दैव से इस देह का अन्तस्वरूप बाहिर आजाय, तो हे आत्मन्, अनुभव करने की इच्छा तो दूर है, कोई इसे देखना भी नहीं चाहेगा ?

> एव पिशित - पिण्डस्य क्षयिणोऽक्षयशकृतः ।
> गात्रस्यात्मन् ! क्षयात्पूर्वं तत्फल प्राप्य तत्यज ॥

यह शरीर मास का पिण्ड है, क्षय होने वाला है और सर्व प्रकार से घृणा का घर है । परन्तु इसमे एक गुण अवश्य है कि यदि कोई साधना करे, तो इससे अक्षय सुख प्राप्त किया जा सकता है । इसलिए हे आत्मन्, इस शरीर के क्षय होने से पूर्व ही उस उत्तम फल को प्राप्त करके फिर इसका त्याग कर दे ।

इस प्रकार स्थूलभद्र के वैराग्य वर्धक उपदेश से उस वेश्या ने श्रावक-व्रतो को अगीकार किया और वह श्राविका बन गई । और पाच अणुव्रतो का पालन करने लगी ।

आज तो दुनिया मे अणुव्रत आन्दोलन का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। परन्तु अणुव्रतो का उपदेश तो सभी तीर्थंकर भगवन्तो ने दिया है । आज यह कोई नई बात नही है । परन्तु आज इसका कोरा दिखावा किया जा रहा है । जैसे होली के बादशाह का किया जाता है । वह कितना ठाठ दिखाता है ? परन्तु किसी को देने के लिए उसके पास कुछ भी नही है । इसी प्रकार अणुव्रत का ढिंढोरा पीटना है ।

हा, अणुव्रतो को स्वीकार करते समय उस वेश्या ने ब्रह्मचर्याणुव्रत के नियम लेते हुए कहा भगवन्, मै कुशील का सर्वथा त्याग करती हू । केवल एक आगार रखती हू कि नगर के राजा या राज्याधिकारी के आने पर छूट है। यद्यपि मै शक्ति भर उन्हे समझाने का और अपना शीलव्रत पूर्ण रूप से पालन करने का प्रयत्न करूगी ।

चिन्तन बदला : गणिका श्राविका बनगई

इस प्रकार स्थूलभद्र मुनि । उस वेश्या को भी श्राविका बनाकर और अपना [illegible] पूर्ण करके विहार कर गये । तदनन्तर राज्य के किसी अधिकारी ने

तो मेरा हृदय उसकी ओर आकर्षित हो सकता है, अन्यथा नहीं। यह सुनकर वह लज्जित होकर वापिस चला गया।

भाई, यह वेश्या के अध्यात्म-चिन्तन का प्रभाव है कि एक राज्य का सेनापति इस प्रकार नत मस्तक होकर चला गया।

स्थूलभद्र की उस महान् साधना का ही यह परिणाम है कि आज लोग भ० महावीर और गौतम स्वामी के पश्चात् अनेक महान् आचार्यों के हो जाने पर भी उनका नाम स्मरण किया जाता है। यथा—

मगल भगवान् वीरो मगल गौतमो गणी।
मगलं स्थूलभद्राद्या· जैन धर्मोऽस्तु मगलम् ॥

अर्थात् भ० महावीर हमारा मगल करे, गौतम गणधर मगल करें, स्थूल-भद्रादिक आचार्य मगल करें और जैनधर्म हमारा मगल करे।

भाइयो, आप लोग जिस उपदेश को सुन रहे हैं, यदि उस पर ही अपना चिन्तन बढा देवे तो फिर आपका ममत्त्व न धन पर रहेगा और न शरीर पर ही रहेगा। अपने आप सर्व वस्तुओं पर से आपका ममत्त्व कम हो जायगा। आप लोगों के पास यह आत्म-चिन्तन तो है नहीं। किन्तु धनी पुरुष मानता है कि मनुष्य तो मैं ही हूं। मेरे मुनीम या नौकर-चाकर मनुष्य नहीं है, वे तो मेरी सेवा करने के लिए ही है। इस प्रकार धनी पुरुष ने अपना सारा चिन्तन इन बाहिरी बातों पर ही लगा रखा है। तब उसे आध्यात्मिक उपलब्धि कहां से हो सकती है। इसी प्रकार विद्वानों को अपनी विद्वत्ता का, बलवानों को अपनी बलवत्ता का और रूपवन्तों को अपनी रूपवत्ता का भी गर्व नहीं करना चाहिए। किन्तु यह सोचना चाहिए कि कामदेव के सामने मेरा क्या रूप है? बाहुबली के सामने मेरा क्या बल है और केवलीभगवन्त केवलियों के सामने मेरी क्या विद्वत्ता है? जब तक मनुष्य अपने से अधिक शक्तिशाली और बड़ा नहीं देखता है, तब तक ही उसे गर्व रहता है। पर भाई, पहाड़ के पास जाने पर ऊंट का गर्व भी दूर हो जाता है।

भाइयो, भगवान ने चित्त का ध्यान की एकाग्रता के लिए कहा है—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥

तो मेरा हृदय उसकी ओर आकर्षित हो सकता है, अन्यथा नहीं। यह सुनकर वह लज्जित होकर वापिस चला गया।

भाई, यह वेश्या के अध्यात्म-चिन्तन का प्रभाव है कि एक राज्य का सेनापति इस प्रकार नत मस्तक होकर चला गया।

स्थूलभद्र की उस महान् साधना का ही यह परिणाम है कि आज लोग भ० महावीर और गौतम स्वामी के पश्चात् अनेक महान् आचार्यों के हो जाने पर भी उनका नाम स्मरण किया जाता है। यथा—

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं स्थूलभद्राद्या: जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्॥

अर्थात् भ० महावीर हमारा मंगल करें, गौतम गणधर मंगल करें, स्थूलभद्रादिक आचार्य मंगल करें और जैनधर्म हमारा मंगल करे।

भाइयो, आप लोग जिस उपदेश को सुन रहे है, यदि उस पर ही अपना चिन्तन बढ़ा देवे तो फिर आपका ममत्व न धन पर रहेगा और न शरीर पर ही रहेगा। अपने आप सर्व वस्तुओं पर से आपका ममत्व कम हो जायगा। आप लोगों के पास यह आत्म-चिन्तन तो है नहीं। किन्तु धनी पुरुष मानता है कि मनुष्य तो मैं ही हूं। मेरे मुनीम या नौकर-चाकर मनुष्य नहीं है, वे तो मेरी सेवा करने के लिए ही है। इस प्रकार धनी पुरुष ने अपना सारा चिन्तन इन बाहिरी बातों पर ही लगा रखा है। तब उसे आध्यात्मिक उपलब्धि कहां से हो सकती है। इसी प्रकार विद्वानों को अपनी विद्वत्ता का, बलवानों को अपनी बलवत्ता का और रूपवन्तों को अपनी रूपवत्ता का भी गर्व नहीं करना चाहिए। किन्तु यह सोचना चाहिए कि कामदेव के सामने मेरा क्या रूप है? बाहुबली के सामने मेरा क्या बल है और केवलीभगवान् ज्ञानियों के सामने मेरी क्या विद्वत्ता है? जब तक मनुष्य अपने से अधिक शक्तिशाली और को नहीं देखता है, तब तक ही उसे गर्व रहता है। पर भाई, पहाड़ के पास जाने पर तो का गर्व भी दूर हो जाता है।

भाइयो, भगवान् ने चित्त की ध्यान की एकाग्रता के लिए कहा है—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए॥

वनते है। अत साधु के ऊपर ही शेष चारो पदो की शोभा हो रही है। यदि एक साधुता चली गई तो न आचार्य है, न उपाध्याय है और न अरिहन्त सिद्ध ही है। इतने वडे पद पर रहते हुए भी साधुजन आचार्य की आज्ञा पालते हैं और उपाध्याय की भी आज्ञा पालते हे। भाई, जिसमे वडप्पन होता है, वही वडा वनता है और उसी का मूल्य अधिक होता है।

अजमेर मे जव साधु सम्मेलन हुआ और आचार्य की पदवी दी गई, तव मैने एक छोटा सा सुझाव रखा कि आप लोग आचार्य वना रहे हो? परन्तु आचार्य की शोभा का लक्ष्य भी है, या नही? उत्तर दिया गया कि—हा लक्ष्य है, तभी वना रहे है। उस समय मने कहा था कि यदि आचार्य की शोभा वढाने का लक्ष्य है तो एक प्रभावक व्याख्याता विद्वान् आचार्य की सेवा मे रखो और चार-चार मास की ड्यूटी लगा दो। वे साधु कैसे रहे कि आचार्य तो नही, किन्तु आचार्य की जोड मे आवे, ऐसे रहे। यदि आचार्य के कार्य मे कोई कमी प्रतीत हो तो वे उसे पूरा कर ले। अत ऐसा ओजस्वी वक्ता विद्वान् आचार्य के पास मे रहना आवश्यक हे। इससे आचार्य के कार्य मे साहाय्य मिलेगा और सघ के कार्य मे वेग प्राप्त होगा और किसी काम मे कोई रुकावट भी नही आयेगी। आज जहा पाच-सात साधु है और आचार्य के समकक्ष नही है। यदि आचार्य वीमार पड जावे, तव वतलाओ—व्याख्यान कौन सुनायेगा? चर्चा—प्रश्नो का उत्तर कौन देगा? अत उनके कार्य को सम्भालने वाला भी होना चाहिए। आचार्य के पश्चात् उपाध्याय का स्थान है। अत सघ मे एक उपाध्याय अवश्य होना चाहिए। कहा है—

मूच हुए भरतार नार किम रहे सुरगी,
आप नवं असवार, तेज किम रहे तुरगी।
जो गुरु होवे भ्रष्ट, चेलो फिरिया किम चाले,
मूरख नें मूरख मिले, तो गुण सगला ही पाले॥
जोगी जोग न राचवे तपसो तप निद्रा गुमे,
सरताप स्याम कामूं करे, जो प्रधान पोचे हुवे॥

बनते है। अत साधु के ऊपर ही शेष चारो पदो की शोभा हो रही है। यदि एक साधुता चली गई तो न आचार्य है, न उपाध्याय है और न अरिहन्त सिद्ध ही है। इतने बडे पद पर रहते हुए भी साधुजन आचार्य की आज्ञा पालते हैं और उपाध्याय की भी आज्ञा पालते है। भाई, जिसमे बडप्पन होता है, वही बडा बनता है और उसी का मूल्य अधिक होता है।

अजमेर मे जब साधु सम्मेलन हुआ और आचार्य की पदवी दी गई, तब मैने एक छोटा सा सुझाव रखा कि आप लोग आचार्य बना रहे हो ? परन्तु आचार्य की शोभा का लक्ष्य भी है, या नही ? उत्तर दिया गया कि—हा लक्ष्य है, तभी बना रहे है। उस समय मैंने कहा था कि यदि आचार्य की शोभा बढाने का लक्ष्य है तो एक प्रभावक व्याख्याता विद्वान् आचार्य की सेवा मे रखो और चार-चार मास की ड्यूटी लगा दो। वे साधु कैसे रहे कि आचार्य तो नही, किन्तु आचार्य की जोड मे आवे, ऐसे रहे। यदि आचार्य के कार्य मे कोई कमी प्रतीत हो तो वे उसे पूरा कर ले। अत ऐसा ओजस्वी वक्ता विद्वान् आचार्य के पास मे रहना आवश्यक है। इससे आचार्य के कार्य मे साहाय्य मिलेगा और सघ के कार्य मे वेग प्राप्त होगा और किसी काम मे कोई रुकावट भी नहीं आयेगी। आज जहा पाच-सात साधु है और आचार्य के समकक्ष नही है। यदि आचार्य बीमार पड जावे, तब बतलाओ—व्याख्यान कौन सुनायेगा ? चर्चा—प्रश्नो का उत्तर कौन देगा ? अत उनके कार्य को सम्भालने वाला भी होना चाहिए। आचार्य के पश्चात् उपाध्याय का स्थान है। अत सघ मे एक उपाध्याय अवश्य होना चाहिए। कहा है—

> नूच हुए भरतार नार किम रहे सुरगी,
> आप नवं असवार, तेज किम रहे तुरगी।
> जो गुरु होवे भ्रष्ट, चेलो फिरिया किम चाल,
> मूरख नें मूरख मिले, तो गुण सगला ही पाले ॥
> जोगी जोग न राखवे तपसी तप निद्रा मुवे,
> सकताप श्याम काम्र करे, जो प्रधान पाचे हुवे ॥

इस पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करके उसे उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। जिससे सघ के प्रति सवको अपने उत्तरदायित्वो का भान रहे। क्योकि विना पत्तो के मूली अच्छी नही लगती है। जैसे आचार्य की शोभा सघ की सदाचारिता से है, उसी प्रकार सघ की शोभा सदाचारी आचार्य से है। यदि आचार्य पहिले वतलाये गये आधारवान्, आचारवान् आदि आठ सम्पदाओ से युक्त ह, तो सघ का सदा ही भविष्य उज्ज्वल रहेगा और वह भगवान् के शासन को दिपावेगा, इसमे कोई सन्देह की वात नही है।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–१०

सिहपोल, जोधपुर

●●

हिन्दी नीतिकार भी कहते है कि 'जाति स्वभाव न जाय'। जिस मनुष्य की प्रकृति भली या बुरी जैसी होती है, वह तदनुसार ही कार्य करता है, भले दुनिया उसके लिए कुछ भी कहती रहे। किसी कुलीन-उच्च घराने के पुरुष को नीच काम करते हुए देखकर लोग कहते है कि अरे, तुझे ऐसा काम करते हुए लज्जा नही आती है? तू कैसे घराने का है और किस जाति का है। इन शब्दो को सुन करके भी वह अपने विषय मे तो विचार नही करता है, उल्टा उत्तर देता है कि ये दूसरे लोग तो मुझ से भी गये बीते है। भाई, अमल का स्वभाव कटुक है, वह उसमे रहेगा ही। और मिश्री का स्वभाव मिष्ट है, वह उसमे रहेगा ही। मिश्री कभी कडवी नही हो सकती और अमल कभी मीठा नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो उत्तम प्रकृति के मनुष्य है वे मिश्री के समान सदा मीठे स्वभाव वाले ही रहेंगे और जो नीच प्रकृति के मनुष्य है, वे अमल के समान सदा कडवे ही रहेंगे। स्वभाव के विषय मे कहा गया है कि—

कूकर कूर कपूर मिले तो ही हाउ न मूके,
लगणियो ह्वै सिंह तो ही मुरवा न ढूके।
जो हुवे राणो दूबलो, जाति तासीर जणावे,
भूखो तो ही भूपाल राकने नहीं सतावे॥
आपदा पड़े उत्तम नरो, नीच कर्म नहिं मंडिये।
कविगद्द कहै हो ठाकुरो, जाति-स्वभाव न छंडिये॥

कुत्ते के सामने सोने के थाल मे उत्तम से उत्तम भोजन परोस कर रख दिया जाय और दूसरी ओर उसे दुर्गन्धित हड्डी का टुकडा डाल दिया जाय, तो वह पहिले हड्डी को ही मुख मे लेकर चबायेगा। क्योकि वह उसे मिष्टान्न से भी अधिक मीठी मानता है। किसी गधे के शरीर पर भी चाहे तोले के दस [illegible] की भाव मालिश कर दीजिए, उसकी थकान क्या दूर होगी? कभी नही। वह तो राख [illegible] आदि पर लोटेगा, तभी उसकी थकान दूर होगी और तभी वह आनन्द का अनुभव करेगा। और लोट-पोट कर हरा-भरा हो जायगा। वह [illegible] मालिश मे आनन्द माननेवाला नहीं है। आखिर [illegible] कर रहा है, यह [illegible]

कि मेरे पति मे शक्ति अधिक है, या मुझमे अधिक है ? यदि लडाई मे पति के चोट आजाय, तो क्या बिगडेगा ? परन्तु यदि मुझे चोट आ जायगी, तो दुनिया कहेगी कि यह बीच मे क्यो आई ? इस प्रकार उसने मार भी खाई और अपनी इज्जत भी गवाई। भाई, यह उसकी भूल नही है, किन्तु वह जिस घराने की जैसी परम्परा देखती आई है, वैसा ही कर रही है, यह उसी का परिणाम है। इसीलिए कहा गया है कि मनुष्य की प्रकृति जन्म-जात भी होती है और परम्परागत भी होती है।

प्रकृति-भेद

हा, तो जो उत्तम प्रकृति का मनुष्य होता है, वह अपना भी कल्याण करता है और दूसरो का भी कल्याण करता है। इस प्रकृति वाला मनुष्य ही सच्चा मानव है, उसकी जितनी भी प्रशसा की जाय, वह उतनी ही कम है। देखो—भगवान स्वय तिरे और दूसरो को भी तारा—जगत् से पार उतारा और आज भी उनके वचन हमे तिरने मे सहायक हो रहे है। यह तो अपनी नादानी है कि हम उन पर ध्यान नही दे रहे है और उन पर अमल नही कर रहे है। उनके वचनो मे तो वही अमृत रस भरा हुआ है और उसका पान करने वाले आज भी आत्मकल्याण कर रहे है।

दूसरी जाति का वह मनुष्य है जो अपना कल्याण तो नही करता है, परन्तु दूसरो का कल्याण अवश्य करता है, वह मनुष्य मध्यमश्रेणी का है, क्योकि वह अपना नुकसान कर रहा है। ऐसे मनुष्य के लिए दुनिया भी कहने लगती है कि इसके घर मे तो कुछ भी नही है और रात-दिन दूसरो की पचायत करता फिरता है। भाई, अपना घर सम्भालते हुए ही दूसरो का घर सम्भालने मे शोभा है। जो अपना कल्याण नही करेगा, वह कितने दिन तक दूसरो का कल्याण कर सकेगा।

तीसरी जाति का वह मनुष्य है जो अपना तो भला करता है, परन्तु दूसरो का नुकसान पहुँचाता है। इस तीसरी श्रेणी के मनुष्यो की ससार मे कमी नही है। [illegible] भाई [illegible] और [illegible] अपना [illegible]

क्योकि त्यागे हुए पदार्थ की ओर देखने से उसके प्रति पुन रागभाव अकुरित हुए विना नही रहता है।

इसी प्रकार जिन्होने भगवान के वचनो की श्रद्धा की है और जो यह मानते है कि वीतरागी सर्वज्ञ जिनदेव ने जो कहा है, वह सत्य है, क्योकि **'नान्यथावादिनो जिनाः'** अर्थात् जिन्होने राग, द्वेष, मोह और अज्ञान को जीत लिया है, ऐसे जिनेन्द्र देव अन्यथावादी-मिथ्याभाषी नही होते हैं, क्योकि उनके असत्य वोलने का कोई कारण ही नही है। उन लोगो को भगवान के कहे तत्त्वो मे शका, काक्षा, विचिकित्सा, परपाखडी प्रशसा और परपाखडी सस्तव भी नही करना चाहिए। किन्तु यही दृढ निश्चय रखना चाहिए कि जो कुछ भगवान ने कहा है, वह सत्य है।

शका का काटा

उपर्युक्त पाच दोषो मे पहिला दोष शका का है। आज लोग वात-वात मे शका करते है कि पहिले के लोग-जिनके शरीरो की अवगाहना पाच-पाच सौ धनुष ऊची थी उनके रहने के मकान कितने वडे होगे, वे क्या खाते और पीते थे? उनके खाने-पीने के पात्र कितने वडे होते होगे और उस समय की नगरिया कितनी-लम्वी चौडी होती होगी? उस समय के मनुष्यो के शरीर-प्रमाण से देखें तो आज सारे भारत मे इने-गिने ही लोग रह सकेंगे, आदि नाना प्रकार की कुतर्कपूर्ण शकाए उठाते रहते है। मैं उनसे पूछता हू कि तुम्हे इससे क्या प्रयोजन है? तुमने जो बात सुनी है, या शास्त्रो मे पढी है, उसमे से जो बात तुम्हारे हित की हो—प्रयोजन की हो—उसे ग्रहण कर लो। इन बातो की पचायत तो वे ही लोग करेंगे, जिनको उनका अधिकार है। सर्व साधारण लोग इन बातो के निर्णय के अधिकारी नही है। जो अभी नवकार मत्र भी पूरी रीति से नही जानते है, उनको इस विषय मे शका करने की क्या आवश्यकता है।

यदि कोई अभी आकर कहे कि अमुक की दुकान मे दस लाख का माल है। और आपने जाकर देखा कि वहा तो पचास हजार का भी माल नही है तो भाई इसमे आपको क्या करना है? आपको तो अपनी ओर देखना चाहिए

१३ | तीन प्रकार के स्थविर

सज्जनो ! स्थानाङ्ग सूत्र का चतुर्थ स्थान बुद्धि-परीक्षण का एक महान् स्थान है, जहा पर आदि से अन्त तक प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी से प्रत्येक बात का विचार किया गया है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग सूत्र मे क्या अन्तर है ? स्थानाङ्ग सूत्र मे एक से लेकर दस बोलो का वर्णन है, अर्थात् पहिले स्थान मे एक-एक सख्यावाली वस्तुओ का, दूसरे स्थान मे दो-दो सख्यावाली वस्तुओ का, तीसरे स्थान मे तीन-तीन सख्यावाली वस्तुओ का यावत् दसवे स्थान मे दस-दस सख्यावाली वस्तुओ का निरूपण है। किन्तु समवायाङ्ग सूत्र मे एक से लेकर सख्यात, असख्यात और अनन्त वस्तुओ का वर्णन है। विश्व की जितनी भी चेतन-अचेतन वस्तुए है, उन सबका समावेश इसमे हो जाता है।

स्थविर कौन ?

स्थानाङ्ग सूत्र मे तीन प्रकार के स्थविर बतलाये गये है—एक वय स्थविर, दूसरे दीक्षा स्थविर और तीसरे सूत्र-स्थविर। स्थविर नाम वृद्ध पुरुष का है। जिस काल मे मनुष्यो का जितना आयुष्य होता है, उसके तीन भाग किता करके तीसरे भाग मे प्रवेश करनेवाले पुरुष को वय स्थविर कहते है। कल्पना कीजिए कि [illegible] युग मे सौ वर्ष की आयु है तो पिचहत्तर वर्ष के पश्चात् आगे के आयुष्य मे [illegible] पुरुष वय स्थविर है। जिस साधु को दीक्षा लिये बीस वर्ष

वाने पर घडी ठीक होगी। अव आप उससे उस पुर्जे को वदलने के लिए कहते है और वह उसे वदलकर सव पुर्जों को यथा स्थान जमा करके और उसे चालू करके आपको सौप देता है। यह व्यवस्था जैसे उस घडी के यत्रो की करता है। इसी प्रकार वक्ता प्रतिपाद्य विपय के एक-एक शब्द की व्याख्या करता है, और तभी वह व्याख्याता कहा जाता है।

राम के रूप अनेक

आपके सामने 'राम' पर कहने का अवसर आया। भाई, 'राम' यह दो शब्दो के सयोग से वना हुआ एक पद है। इनका परस्पर क्या सम्वन्ध है, यह शब्द कैसे वना और इसका क्या अर्थ है, यह सव व्याकरण शास्त्र के जाने विना नही ज्ञात हो सकता है। सस्कृत व्याकरण के अनुसार 'रमु' धातु से यह राम शब्द वना है और इसका अर्थ होता है—**'रमन्ते योगिनो यस्मिन्नसौ रामः।'** अर्थात् जिसमे योगी जन रमण करे अथवा **'रमयति मोदयति योगिजनमिति राम.'** अर्थात् जो योगिजन को भी प्रमुदित करे, उसे राम कहते है। भाई, जो योगीपुरुषो के हृदय मे रमण करता है, अर्थात् योगीजन जिसका निरन्तर ध्यान करते है, उस शुद्ध-आत्मा या परमात्मा का नाम राम है। परन्तु सर्व साधारण लोग तो दशरथ और कौशल्या के पुत्र को ही राम जानते है। आगम की दृष्टि से जो नौ वलदेव होते है, उन्हे राम कहा जाता है। तथा लोग जगत् के कर्ता को भी राम कहते है। इन सव अर्थों को लेकर एक कवि ने कहा है—

> **एक राम घट-घट मे बोले, दूजा राम दशरथ घर डोले।**
> **तीजे राम का जगत् पसारा, चौथा राम है सबसे न्यारा॥**

भाइयो, राम शब्द तो एक है उसके चार अर्थ करके उसे चार रूपो मे विभक्त कर दिया। एक राम जो प्रत्येक देहधारी के घट मे बोलता है, वह राम है—चेतन आत्माराम। यह चेतनराम एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सर्व शरीरो मे विद्यमान है, जो आत्मा कहलाता है। दूसरा राम है दशरथ का दुलारा और कौशल्या का प्यारा। यह दुनिया का राम है। तीसरा राम वह है जिसने दुनिया का विस्तार किया है। दुनिया जो कहती है कि 'राम ही [illegible]' [illegible] के कर्ता, [illegible], आदि। भाई, [illegible]

निजार्जित कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन ।

अपने उपार्जित कर्म को छोड करके और कोई दूसरा व्यक्ति किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दु:ख नही देता है । हिन्दी भाषी कवि ने भी कहा है—

कीधा विन लागे नहीं, कीधा कर्मज होय ।
कर्म कमाया आपणा, जेथी सुख-दुख जोय ॥

कवि दलपतरायजी कह रहे हैं कि अपने किये कर्मो का विचार करके तुम अपने सम्यक्त्व को दृढ करो । यदि आपने कुछ भी भला-बुरा कर्म नहीं किया है, तो आपको उसका फल नही भोगना पडेगा ।

कर्म शब्द का अर्थ है—'यत् क्रियते तत् कर्म ।' जो जीवके द्वारा किया जाय, वह कर्म कहा जाता है । संस्कृत व्याकरण मे सात विभक्तिया होती है, जिन्हे कारक भी कहते है । वे इस प्रकार है—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण । जो काम को करे, उसे कर्त्ता कहते है । जो काम किया जाता है, उसे कर्म कहते है । जिसके द्वारा वह काम किया जाय, उस साधन को करण कहते है । जिसके लिए कार्य किया जाय, उसे सम्प्रदान कहते है । जिसमे वह होता है, उसे अपादान कहते है । जिसके साथ कर्म का सम्बन्ध हो, उसे सम्बन्ध कारक कहते है और जिसमे किया जाय, उसे अधिकरण कहते है । इन सभी का आशय यही है कि जीव अपने भले-बुरे भावो के द्वारा जो भले-बुरे काम स्वयं करता है, वह उस प्रकार के कर्मो को अपने भीतर बाध लेता है और समय आने पर वे ही कर्म सुख-दु:खरूप फल उसको देते है । इस कर्म के सिवाय और कोई हमको सुख-दु:ख का देने वाला नहीं है ।

मनुष्य हंसते हुए तो बुरे कर्मो को करता है और उनके फल को रोते हुए भोगता है । भाई, जब बुरा कर्म हंसते हुए किया है, तो हंसते हुए ही उसे चुकाना चाहिए । रोते हुए चुकाना तो अपनी अज्ञता और कायरता दिखाना है । इसलिए [illegible] दु:खदायी फल के मिलने पर ऐसा विचार करना चाहिए कि—

वार सभव हो जाये, परन्तु कर्म की रेखा नही टल सकती है। जैसा कि कहा है—

> उदयति यदि भानुः पश्चिमाया दिशाया,
> प्रचलित यदि मेरुः शीतता याति वह्निः।
> विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलाया,
> तदपि न चलति नराणा भाविनी कर्मरेखा ॥

सूर्य पूर्व दिशा मे ही उदय को प्राप्त होता है, यह प्रकृति का अटल नियम है, वह भी कदाचित् दैविक शक्ति से, या मत्रादि के प्रयोग से पश्चिम दिशा मे उदय होने लगे, तो कोई बडी बात नही है। जिसकी नीव भूमिमे एक हजार योजन है, ऐसा अचल रहने वाला सुमेरु पर्वत भी यदि चल-विचल होवे, तो भले ही हो जावे। देखो—जन्माभिषेक के समय भगवान महावीर ने अपने अगूठे को दबाया, तो वह भी हिल गया था। अग्नि का स्वभाव उष्ण है, फिर भी यदि वह शीतल हो जाय, तो हो जावे। सीता के शील के महात्म्य से प्रज्वलित अग्नि भी शान्त हो गई थी। कमल सदा ही कीचड से उत्पन्न होकर जल मे ही विकसित होता है। वह भी किसी दैवी चमत्कार से पर्वत के शिखर पर स्थित शिला पर उत्पन्न हो जाय, तो हो जावे। अर्थात् इतनी सब असभव बाते भले ही सभव हो जाये। परन्तु होने वाली कर्म की रेखा कभी इधर से उधर नही हो सकती है। उसे टालने को कोई समर्थ नही है। ससार मे तीर्थंकर से बडा पुण्यशाली और शक्तिशाली दूसरा कोई नही होता। कर्मोदय से उनके भी कानो मे कीले ठोके गये। चक्रवर्ती की हजारो देव सेवा करते है, उनके भी शारीरिक व्याधिया हुई और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को सात सौ वर्षो तक अन्धा रहना पडा। जब कर्म के उदय ने उन-महापुरुषो को भी नही छोडा। तब आज के लोग ऐसे पागल हो रहे है कि रामदेवजी के, भटियानीजी के, बाबा साहब के और जोगमाया के पूजो तो आगे खुल जायेगी, यह कैसे सभव है? भाई, ये सब भेंट उस राम महापुरुष के नही है किन्तु इस कर्म राम के है, जिसके लिए कहा गया है कि 'तीसरे राम का जगत पसारा'।

और राम इन सब राम से न्यारा है। वह है परमब्रह्म, परमात्मा,

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ॥
जो मै हू वह है भगवान, जो वह है, मैं हू भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहा राग-वितान ॥

यदि बीच मे यह राग-द्वेष का वितान दूर हो जाय, तो अपने राम को भी उस नित्य, निरजन राम के समान बनने मे कुछ भी देर नही लगेगी। परन्तु हम अपने स्वरूप को भूले हुए है और अपने को दीन-अनाथ मानकर आक्रन्दन, हाहाकार और कुहराम मचा रहे है। हमने अपने ऊपर ससार भर की चिन्ताए और झझटे स्वय ही ले रखी है। इसी से आत्माराम दीन और अनाथ बना हुआ है। यदि अपनी इस दीनता और अनाथता को छोडकर सिहवृत्ति धारण करले, राग-द्वेष को त्याग कर प्राणिमात्र के साथ मैत्री भाव और अहिसक वृत्ति को धारण कर लेवे, तो तुझे भी उस राम के समान बनने मे विलम्ब नही होगा और तू भी सच्चिदानन्द आत्माराम बन जायगा।

किसी पुत्र-विहीन सेठ ने किसी किशोर से कहा—तू मेरी गोद मे आजा। उसने पूछा—आपके पास कितनी पूजी है? सेठ ने बताया कि मेरे पास पाच लाख की पूजी है। तब वह कहता है कि पाच लाख की पूजी तो मेरे पास है, फिर मैं क्यो आपके गोद जाऊ? गोद तो वही जायगा, जिसके पास पूजी नहीं होगी। आपके सामने उदाहरण है कि गौतम स्वामी भगवान महावीर के पट्ट धर शिष्य थे। परन्तु भगवान के मोक्ष पधार जाने के बाद क्या गौतम स्वामी उनके पट्ट पर बैठे? नही बैठे। क्योकि भगवान के मोक्ष पधारते ही वे उनके समान ही केवलज्ञानी हो गये। जो पूजी भगवान के पास थी, वही उन्हे भी प्राप्त हो गई। यही कारण है कि केवली के पाट पर दूसरा केवली नही बैठता है। इसलिए भगवान के पाट पर सुधर्मा स्वामी बैठे।

भाइयो, तब तक ही राम-राम, अरिहन्त-सिद्ध आदि के नाम की माला फेरी जाती है, जब तक कि यह आत्माराम स्वय राम और अरिहन्त सिद्ध नही बनता है। किन्तु उस अवस्था के प्राप्त होने पर उसका राम-नाम जपना [illegible]

बात सुनेंगे। अब बगल पर मिलने का क्या मतलब होता है, यह आप सब जानते ही है। ऐसे रिश्वत खोरो-से क्या कोई अपना मकान किरायेदारो से खाली करा सकता है? कभी नही? किन्तु जब मकान मालिक हाथ में डडा लेकर किरायेदारो को ललकारता है, तब किरायेदार चुपचाप अपना बसना-बोरिया बाधकर भागते नजर आते है। भाई, इस सबके कहने का अभिप्राय यही है कि हमें भी अपने आतमाराम के घर पर कब्जा किये हुए इन कर्म-रूपी किरायेदारो को तपश्चरण रूपी डडा लेकर निकालने का परम पुरुषार्थ करना होगा, तभी उनसे अपना मकान खाली करा सकेंगे। अन्यथा ये सहज मे खाली करनेवाले नही है। और वे खाली करेंगे भी कैसे? जब तक कि हमारी ओर से उन्हे भर-पूर पोषण मिल रहा है, हमारे ही विकारी भावो से उन्हे समर्थन प्राप्त हो रहा है, तब वे कर्म हमारे आतमाराम का मकान खाली भी कैसे करेंगे। उनसे अपना मकान खाली कराने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने भीतर विवेक जाग्रत करें और उससे यह निर्णय करें कि विषयो की चाह और कषायो की दाह मेरे स्वभाव नही है। ये तो कर्म-कृत है। जब तक मैं विषय-कषाय की चाह-दाह मे पड़ा रहूगा, तब तक और पुष्ट एव बलवान् बनेगे। अत. इस चाह-दाह को छोडकर मैं पचेन्द्रियो का दमन करू, कषायो का शमन करू और पर पदार्थों मे इष्ट-अनिष्ट बुद्धि छोडकर अपने ज्ञान-दर्शनमयी ज्ञाता द्रष्टा आतमराम का चिन्तवन करू। ऐसा करने से जब उन कर्मों को खुराक नही मिलेगी, तब सब भूख से वे स्वय ही मर जावेंगे और उनसे हमारा मकान खाली हो जायगा। फिर हम अपने मकान की तपस्तेज से शुद्धि करके और शुक्ललेश्या से सफेदी करके स्वच्छ-निर्मल निज भवन मे चिरकाल तक निराकुलता पूर्वक विश्राम करेंगे।

इस प्रकार के स्वच्छ भवन मे विश्राम करने वालों को सिद्ध परमेष्ठी कहते है। यह शुद्ध दशा कर्मरूपी शत्रुओ के नाश के बिना सम्भव नही है, अत सिद्ध बनने के पूर्व अरिहन्त परमेष्ठी बनना पड़ता है। जब यह आत्माराम कर्म-अरियों का हनन करता है, तभी वह चौंतीस अतिशय, पैंतीस वचनातिशयों और आठ प्रातिहार्यों का धारक एव अनन्त चतुष्टय का स्वामी बन जाता है। इस अरिहन्त

इस गाथा के अर्थ को पण्डित दौलतराम जी ने इस प्रकार कहा है—

कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान-विन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन-माहि त्रिगुप्ति तें सहज टरैं ते॥

भाइयो, हमें इस सम्यग्ज्ञान को पाने के लिए सूत्र-स्थविर की उपासना करनी चाहिए, जिससे कि हम उसे पाकर असख्य भवों के कर्मों के क्षणमात्र में भस्म कर सकें।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–१२
सिंहपोल, जोधपुर

●●

प्रयत्न करे तो एक लम्बे समय के पश्चात् भी वैसा मोर पंख नही बना सकेगा।

मूलवर्ण (रग) पाच ही है, परन्तु उनके सम्मिश्रण से अनेक रग बन जाते है। जैनागमो मे काला, पीला, नीला, लाल और सफेद ये पाच मूलवर्ण माने है। आज वैज्ञानिको ने भी इन्ही को मूल रग माना है। इसी प्रकार रस के भी मूल भेद पाच है—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर। इन पाचो रसो के सम्मिश्रण से अनेक प्रकार के रस उत्पन्न हो जाते है। गन्ध के मूल भेद दो ही है—सुगन्ध और दुर्गन्ध। किन्तु इनके परस्पर हीनाधिक परिमाण के साथ सम्मिश्रण करने से अनेक प्रकार के गन्धवाले द्रव्य बन जाते है। गुलाब, केवडा, बेला, चमेली आदि की गन्ध सामान्यत सुगन्ध के ही अन्तर्गत है। इसी प्रकार लहसुन, प्याज, हीग, नीम आदि की गन्ध दुर्गन्ध के अन्तर्गत है। इसी प्रकार स्पर्श के मूल भेद आठ है—स्निग्ध-रूक्ष, शीत-उष्ण, मृदु-कर्कश और गुरु-लघु। इनके भी परस्पर-सम्मिश्रण से अनेक जाति के स्पर्श बन जाते है। आज विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार कर रहा है।

जैनधर्म की वैज्ञानिक दृष्टि

पहिले आधुनिक विज्ञान वेत्ता पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति मे जीव नही मानते थे। किन्तु जब से सर जगदीशचन्द्रबसु ने वनस्पति मे श्वासोच्छ्वास का लेना यन्त्र द्वारा प्रत्यक्ष दिखा दिया है, तब से वैज्ञानिक लोग वनस्पति, पृथ्वी और जल मे जीव स्वीकार करने लगे है। फिर भी अग्नि और वायु मे अभी उन्होने जीवन नही स्वीकार किया है। आज जो नवीन शोधे दिन-पर-दिन हो रही है उससे आशा है कि निकट भविष्य मे इन दोनो मे भी चैतन्य का सद्भाव स्वीकार कर लिया जायगा। इस प्रकार जैनागमो मे पृथिवी आदि के जो जीवनपना माना गया है, वह विज्ञान से भली-भाति सिद्ध है। पृथ्वीकाय आदि किसी एक काय के आरम्भ मे छहो काय के जीवो की हिंसा होती है, क्योकि सर्वत्र छह काय के जीव विद्यमान है। यह बात भी आज विज्ञान से प्रमाणित है। जैनदर्शन एक वैज्ञानिक दर्शन है और वह वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन किसी एक दृष्टि से नही करता है, किन्तु नाना दृष्टियो

तुम्हारे वडप्पन मे ही कलक लगेगा। आसामी भी कहता है कि मैंने मूल पूजी तो दे दी है। केवल व्याज ही वकाया है। वह भी मैं देता। परन्तु इन दिनो मेरा काम ढीला पड गया है। इस प्रकार चारो ओर की परिस्थिति देखकर वह मुनीम अपने कर्त्तव्य का निर्णय करता है और जो कुछ वह राजी-खुशी देता है, उसमे ही फैसला करके वापिस आजाता है। अथवा कोई ऐसा आसामी है जिसकी निजी मकान-दुकान है और दुकान मे भी लाखो का माल है। फिर भी मुनीमजी के मागने पर पिस्तौल दिखा कर कहता है—खबरदार, यदि देने-लेने की वात की तो गोली मार दूगा। ऐसे अवसर पर भी मुनीम सब आगा-पीछा सोचकर काम करता है।

आप लोगो का ज्ञात है कि जो नौहरा आज महाराजा विजयसिहजी का मौजूद है उसका पट्टा दिखाने के लिए श्यामविहारी जी ने हुक्म दिया। अव लोग पट्टा देखने के के लिए वहा गये तव वह महाराजा विजयसिहजी—वहा पर दुनाली लेकर वैठ गया और पट्टा मागने वालो से दुनाली का घोडा दवाते हुए वोले—कहो, दिखाऊ पट्टा ? तो यह सुनते ही सब लोग वापिस चले गये। भाई, अवसर देखकर ही काम किया जाता है। इसीलिए तो सेठ ने मुनीम से कहा था—'घर का गवाना मत । मुनीम देखता है कि आसामी की नीयत वुरी है, तो शान्ति से काम लेता है और कहता है—भाई, मैं तो सेठ का नौकर हू। आप जैसा चाहे, मैं वैसा ही फैसला करने को तैयार हू। वह कहता है—वारह आने दूगा, या आठ आने और चार आने देने की कहता है, तो उसी को लेकर वापिस चला आता है। सेठजी कहते है—मुनीमजी, यह क्या किया ? तब मुनीमजी कहते है—क्या मै सारा गवाकर आता ? वहा परिस्थिति ही ऐसी थी, अत यही लेकर फैसला कर आया हू।

भगवान् ने भी यही आदेश और उपदेश दिया है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विचार करके ही किसी कार्य का निर्णय करना चाहिए, केवल अपनी दृष्टि मे ही किसी बात का निर्णय नही करना चाहिए। किन्तु सामने वाले की स्थिति का भी ध्यान मे रखकर निर्णय करना चाहिए।

आपका कोई घनिष्ठ मित्र है और जैसा आप कहते है, वह वैसा ही काम करता है। वह आपके कहे अनुसार किसी काम को पूरा करने के लिए आपके घर गया और आपकी श्रीमतीजी से उसके विषय मे कहा। वह बोली—खबरदार, यदि इस सम्बन्ध मे कुछ कहा तो घर मे आना बन्द कर दूगी। दुकान पर सेठजी का राज है। किन्तु घर पर मेरा राज है। यहा मै जो कुछ कहूगी, वही होगा। अब भले मित्र का यही कर्तव्य है कि वह चुपचाप वापिस लौट आवे।

भाई, एकबार मै एक गाव मे किसी सस्था के कार्य के लिए गया। गाव वालो ने बताया कि यहा पर तो अमुक व्यक्ति सम्पन्न है पूजी भी पास मे है। यदि वे हुकारा भर ले तो काम बन जाय। मैने अपने उपदेश मे उस कार्य के करने की चर्चा की। उस सेठने कार्य की सराहना की। जब उससे द्रव्य देने के लिए कहा गया तो बोला—महाराज, मुझे सोचने के लिए कुछ अवसर दीजिए। उसकी इस बात से मै समझ गया कि वह अपनी श्रीमतीजी से सलाह करना चाहता है। मैने भी कह दिया—अच्छा, सोच लेना। सेठ की इच्छा पच्चीस हजार देने की दिखी। सेठ व्याख्यान से उठकर दुकान पर गया। उसके घर पहुचने के पूर्व ही मै गोचरी के लिए उसके घर चला गया। मैने उसकी सेठानी से कहा—बाई, उत्तम काम है, तेरी क्या मर्जी है। सेठानी बोली—बावजी, सेठजी जाने। मैने कहा—जो तू कहेगी, वही होगा। सेठानी ने कहा—जो आप हुक्म करे। तब मैने कहा—पचास हजार चाहिए। तब वह बोली—पाच हजार मेरे अधिक है। मैने कहा—जब सेठजी आवे, तब उनसे यह कहना कि महाराज ने बुलाया है। उन्हे मेरे पास जल्दी भेज देना। और अवसर होवे तो तू भी साथ मे आ जाना।

तुम्हारे वडप्पन मे ही कलक लगेगा। आसामी भी कहता है कि मैंने मूल पूजी तो दे दी है। केवल व्याज ही वकाया है। वह भी मैं देता। परन्तु इन दिनो मेरा काम ढीला पड गया है। इस प्रकार चारो ओर की परिस्थिति देखकर वह मुनीम अपने कर्त्तव्य का निर्णय करता है और जो कुछ वह राजी-खुशी देता है, उसमे ही फैसला करके वापिस आजाता है। अथवा कोई ऐसा आसामी है जिसकी निजी मकान-दुकान है और दुकान मे भी लाखो का माल है। फिर भी मुनीमजी के मागने पर पिस्तौल दिखा कर कहता है—खबरदार, यदि देने-लेने की वात की तो गोली मार दूगा। ऐसे अवसर पर भी मुनीम सव आगा-पीछा सोचकर काम करता है।

आप लोगो का ज्ञात है कि जो नोहरा आज महाराजा विजयसिहजी का मोजूद है उसका पट्टा दिखाने के लिए श्यामविहारी जी ने हुक्म दिया। अव लोग पट्टा देखने के के लिए वहा गये तव वह महाराजा विजयसिहजी—वहा पर दुनाली लेकर बैठ गया और पट्टा मागने वालो से दुनाली का घोडा दवाते हुए वोले—कहो, दिखाऊ पट्टा ? तो यह सुनते ही सव लोग वापिस चले गये। भाई, अवसर देखकर ही काम किया जाता है। इसीलिए तो सेठ ने मुनीम से कहा था—'घर का गवाना मत'। मुनीम देखता है कि आसामी की नीयत वुरी है, तो शान्ति से काम लेता है और कहता है—भाई, मैं तो सेठ का नोकर हू। आप जैसा चाहे, मै वैसा ही फैसला करने को तैयार हू। वह कहता है—वारह आने दूगा, या आठ आने और चार आने देने की कहता है, तो उसी को लेकर वापिस चला आता है। सेठजी कहते है—मुनीमजी, यह क्या किया ? तव मुनीमजी कहते है—क्या मै सारा गवाकर आता ? वहा परिस्थिति ही ऐसी थी, अत यही लेकर फैसला कर आया हू।

भगवान् ने भी यही आदेश और उपदेश दिया है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विचार करके ही किसी कार्य का निर्णय करना चाहिए, केवल [illegible] शब्द मे ही किसी बात का निर्णय नहीं करना चाहिए। किन्तु सामने वाले की स्थिति को भी ध्यान मे रखकर निर्णय करना चाहिए।

आपका कोई घनिष्ठ मित्र है और जैसा आप कहते है, वह वैसा ही काम करता है। वह आपके कहे अनुसार किसी काम को पूरा करने के लिए आपके घर गया और आपकी श्रीमतीजी से उसके विषय मे कहा। वह बोली—खबरदार, यदि इस सम्बन्ध मे कुछ कहा तो घर मे आना बन्द कर दूंगी। दुकान पर सेठजी का राज है। किन्तु घर पर मेरा राज है। यहा मै जो कुछ कहूंगी, वही होगा। अब भले मित्र का यही कर्तव्य है कि वह चुपचाप वापिस लौट आवे।

भाई, एकबार मै एक गाव मे किसी सस्था के कार्य के लिए गया। गाव वालो ने बताया कि यहा पर तो अमुक व्यक्ति सम्पन्न है पूंजी भी पास मे है। यदि वे हुंकारा भर ले तो काम बन जाय। मैंने अपने उपदेश मे उस कार्य के करने की चर्चा की। उस सेठने कार्य की सराहना की। जब उससे द्रव्य देने के लिए कहा गया तो बोला—महाराज, मुझे सोचने के लिए कुछ अवसर दीजिए। उसकी इस बात से मै समझ गया कि वह अपनी श्रीमतीजी से सलाह करना चाहता है। मैने भी कह दिया—अच्छा, सोच लेना। सेठ की इच्छा पच्चीस हजार देने की दिखी। सेठ व्याख्यान से उठकर दुकान पर गया। उसके घर पहुंचने के पूर्व ही मै गोचरी के लिए उसके घर चला गया। मैने उसकी सेठानी से कहा—बाई, उत्तम काम है, तेरी क्या मर्जी है। सेठानी बोली—बापजी, सेठजी जाने। मैने कहा—जो तू कहेगी, वही होगा। सेठानी ने कहा—जो आप हुक्म करे। तब मैने कहा—पचास हजार चाहिए। तब वह बोली—पांच हजार मेरे अर्पण है। मैने कहा—जब सेठजी आवें तब उनसे यह कहना कि महाराज ने फरमाया है। उन्हें मेरा यह सन्देश कह देना। और जरूरत होवे तो तुम भी साथ मे आ जाना।

देखने लगे और वोले—यदि सेठजी कह देवे तो क्यो दूसरो को कष्ट दिया जाय। मैने सेठजी की ओर मुख करके कहा—भाई, क्या मर्जी है ? तुमने सलाह कर ली है ? मेरे ऐसा कहते ही सेठानी वोली—महाराज की जो मर्जी होवे, वही ठीक है। तव मैने कहा—इक्यावन हजार ठीक है। उसने कहा—जैसी महाराज की आज्ञा। भाई, दान-पुण्य के अवसर पर अपनी सहधर्मिणियो से सलाह करके काम करना ठीक रहता है, क्योकि वे आपकी धर्मपत्नी है। जो धर्म को पाले, उसे ही धर्मपत्नी कहते है। और उन्हे भी चाहिए कि पति के प्रत्येक सत्कार्य मे वे पूर्ण सहयोग देवे। शास्त्रकार कहते है कि—

नित्य भर्तृमनीभूय वर्तितव्य कुलस्त्रिया।
धर्म श्रीशर्मकीर्त्येककेतन हि पतिव्रता॥

कुलवन्ती स्त्री को सदा अपने भर्तार के मन के अनुकूल ही वर्तना चाहिए। क्योकि पतिव्रता स्त्री धर्म, लक्ष्मी, कीर्त्ति और सुख की आगार है।

इस प्रकार वहा की आवश्यकता एक सेठजी ने ही पूर्ण कर दी। भाई, जिसके हाथ मे हो, वही दे सकता है। जिसके हाथ मे नही है, उससे कहना व्यर्थ है। मनुष्य को दाता की नाडी का परिज्ञान होना चाहिए। हम आपसे कहते है कि अमुक काम करना है तो आप लोग सुन करके माथा नीचा कर लेते है। परन्तु हमे तो हर एक की नस देखनी पडती है कि कहा दवाने पर काम सिद्ध होगा। कहने का सार यही है जहा जिस प्रकार से कार्य सम्पन्न होने की सभावना हो, वहा उसी प्रकार से अवसर देखकर कार्य सिद्ध कर लेना चाहिए। घर मे यदि पुरुष चतुर है तो वह घर का काम चला सकता है और यदि स्त्री चतुर हो तो वह भी काम चला सकती है ?

चतुर नारी

किसी शहर मे एक श्रीमन्त सेठ रहते थे। उनकी दिसावर मे पन्द्रह सौ दुकाने चलती थी। घर पर सर्व प्रकार के राजसी ठाठ-बाट थे। और शान-शौकत के साथ ही घर से बाहिर निकलते थे। एक बार वे हवाखोरी करके घर वापिस आरहे थे। उनके साथ मे सैकडो तामदार थे और हाथी घोडे भी [illegible]। उसी समय मार्ग मे नगर के राजा की सवारी निकली। राजा

ने दीवान से पूछा—सामने से किसकी यह सवारी आ रही है? कोई शत्रु तो चढकर नही आ रहा है? जाकर देखो—कौन आ रहा है राजा वही पर ठहर गये। दीवान ने जाकर देखा—अरे, ये तो नगरसेठ है। उनसे पूछा—सेठजी, कहा गये थे? सेठजी बोले—दीवान साहब हवाखोरी के लिए गया था। अब वहा से वापिस आ रहा हू। दीवान ने वापिस आकर राजा से कहा—ये तो अपने नगर के ही सेठजी हैं। राजा ने पूछा—इनका क्या नाम है, और कहा पर रहते है? दीवान ने सेठजी का पूरा परिचय दिया। सुनकर राजा बोला—अरे, यह तो घर मे ही घाटा है। नगर मे ऐसे-ऐसे मालदार सेठ रहते है [illegible] भी मुझे दीवानजी, आपने आज तक कुछ भी जानकारी नही दी? [illegible] सेठो से मित्रता की जाय तो राज्य का दारिद्र्य दूर हो जाय। दीवान बोला—हा महाराज, सेठ से अवश्य ही मित्रता स्थापित करनी चाहिए। फिर देर क्या था? तुरन्त वही जाजम बिछवा दी गई। और राजा साहब वही विराज गये। जब सेठजी की सवारी यहा तक पहुची तो उन्हे लोगो से ज्ञात हुआ कि सामने राजा साहब विराज रहे है। सेठ तुरन्त सवारी से नीचे उतर और राजा साहब से रामा-सामा करने के लिए सामने गये। सेठजी को आता हुआ देख-कर राजाजी कुर्सी से उठे और पाच-सात कदम आगे आकर सेठजी का स्वागत करते हुए बोले—सेठजी पधारिये। यह कहकर राजाजी सेठजी का हाथ पकड़-कर अपने पास की कुर्सी पर बैठाने लगे। तब सेठ ने कहा—मैं आपकी [illegible] मैं कैसे बैठ सकता हू? महाराज ने कहा—यह आपकी [illegible] और उनका हाथ पकड कर अपने पास की कुर्सी पर [illegible] दिया। [illegible]

तू बडा सौभाग्यशाली है जो राजा ने तुझे अपना मित्र बनाया है। इसके पश्चात् सामान्य शिष्टाचार के पश्चात् दोनो अपने-अपने महलो पर चले गये।

सेठजी ने घर पहुचकर हाथ-मुह धोया और भोजन के लिए बाजोट पर विराज गये। परोसगारी करते समय सेठानी की दृष्टि सेठजी की पगडी पर गई। पगडी पर सदा के समान पेच नही दिखाई दिये। सेठजी मरोडदार पेच लगाते थे। भाई, जिसके हाथ मे मरोड है, उसके पेच मे भी मरोड होती है। सेठानी बोली—आज आपकी यह बिना मरोड वाले पेच के पगडी कैसी ? और आज आपके चेहरे पर इतनी खुशी कैसी दिख रही है ? सेठ ने मार्ग मे घटी हुई सारी घटना कह सुनाई। साथ ही उसने यह भी कहा कि मैने महाराज से बहुत कुछ कहा कि मै सेठानी जी से पूछे बिना मित्रता करने के विषय मे कुछ नही कह सकता हू। मगर महाराज नही माने और उन्होने अपने हाथ से ही यह पगड-बदल दोस्ती कायम कर दी। यह सुनकर सेठानी बोली—आपने बहुत भूल की है। राजाओ से कभी मित्रता नही करनी चाहिए। इन लोगो से सदा इस प्रकार दूर रहना चाहिए जिस प्रकार कि अग्नि से दूर रहा जाता है। नीति कहती है कि—

'नटायन्ते हि राजान. सेव्या हव्यवहा यथा।'

अर्थात् राजा लोग नट के समान आचरण करते है, कभी डोरी के इस किनारे नाचते है और कभी उस किनारे नाचते है। इन लोगो की दृष्टि बदलते देर नही लगती है। इनकी सगति को अग्नि के समान दूर से ही अच्छी है। अग्नि हमारे भोजन को पकाती है, सर्दी को दूर करती है एव अन्य और भी बहुत उपकार करती है, परन्तु उसे लोग दूर से ही तापते है, और उससे बच कर ही रहते है। इसी प्रकार राजाओ की सेवा भी दूर से ही करना चाहिए। इन लोगो के साथ की गई घनिष्ठता या मित्रता हमेशा दु ख देती है।

राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा

सेठानी की इन बातो को सुनकर सेठजी बोले—अरी तू तो बिल्कुल [illegible] भी दिखती है। राजाओ के साथ मित्रता तो पुण्यशाली [illegible]

होती है। तुझे तो खुशी मनानी चाहिए। यह सुनकर सेठानी ने फिर कहा—कि आपने यह काम अच्छा नही किया है, इसका भविष्य मे आपको पता चलेगा। सेठजी बोले—तू व्यर्थ की आशका करती है, राजपुत्र और भी मित्र गया है। अब महाराज के पास मेरा आना जाना होगा और राज-काज भी शामिल होंगे, जिससे मेरी धाक भी सब पर रहेगी।

इस प्रकार सेठजी का राजा के यहा आना-जाना प्रारम्भ हो गया। सेठजी की दिसावरो की दुकानो से कोई बढिया वस्तु आती तो वे राजा के यहा भिजवाते। और राजा के यहा से भी बदले मे कोई न कोई वस्तु आ ही जाती ? इस प्रकार दोनो की मित्रता दिन-प्रति दिन घनिष्ठ होने लगी। राज्य का किसी खास मामले मे यदि सलाह की आवश्यकता होती, तो वे [illegible] लेते रहते। सेठजी की सलाह से राज-कार्यों मे लाभ भी पर्याप्त होने लगा। आखिर, महाजन की बुद्धि केवटने की होती है। धीरे-धीरे मित्रता ने [illegible] ले लिया कि महाराज हर मामले मे सेठजी के साथ ही विचार-विमर्श करने लगे। यह देखकर दीवान ने सोचा कि यह बनिया राजा [illegible] है, तो फिर हमारा यहा रहना कठिन है। अब कोई ऐसा उपाय [illegible] कि [illegible] यहा से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाय [illegible] पाचदान [illegible] बिस्तर गोल हो जायेगा।

सदा ही विजय, यश और लाभ तीनो की प्राप्ति हो रही है अत आपकी बात मैं कैसे सच मान सकता हू।

दीवान सोचने लगा—सेठ ने महाराज को सर्व ओर से अपने वश मे कर लिया है। अत महाराज उसके विरुद्ध कोई बात सुनने वाले नही है। अब और कोई उपाय सोचना चाहिये जिससे कि सेठ की सत्ता यहा से हटे। अत एक दिन अवसर पाकर उसने महाराज से कहा—सेठजी के यहा से नित्य कोई न कोई नयी भेंट आती रहती है। परन्तु आपने तो उनको कभी जल-पान के लिए भी नही बुलाया है। मित्रता के लिए जैसे अपनी गुप्त बात कहना और मित्र की गुप्त बात सुनना और परस्पर मे उचित सलाह देना आवश्यक है, उसी प्रकार खाना-खिलाना और देना-लेना भी आवश्यक है। नीति मे कहा है—

ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुक्ते भोजयते चैव षडेते प्रीतिलक्षणम्॥

महाराज, मित्र को भेंट देना और उसकी भेंट को स्वीकार करना, अपने सुख-दुःख की गुप्त बात मित्र से कहना और उसके सुख-दुःख की गुप्त बात पूछना जैसे मित्र के साथ प्रीति बढाती है, उसी प्रकार मित्र को खिलाना और उसके यहा खाना-पीना भी प्रीति को बढाता है। इसलिए महाराज, एकबार तो आप सेठजी को प्रीतिभोज दीजिए। राजा साहब यह सुनकर हर्षित होकर बोले - दीवानजी, आपका कहना बिलकुल सत्य है। उन्हे आज ही कल के भोजन के लिए आमन्त्रित करो।

सायकाल के समय महाराज हवाखोरी के लिए गये। सेठजी भी हवा-खाने के लिए गये हुए थे। अत नगर के बाहिर ही दोनो का आमना-सामना हो गया। साधारण शिष्टाचार के पश्चात् राजा ने कहा—सेठ साहब, कल सपरिवार आप राजमहल मे भोजन के लिए पधारिये। सेठ ने कहा—महाराज, मै प्रतिदिन आपका ही तो खाता हू। फिर भी यदि आपका आदेश है तो उसके पूर्व मेरा निवेदन है कि पहिले महाराज मेरा घर पवित्र करे। पीछे आपका आदेश शिरोधार्य है। दीवान ने कहा—हा महाराज, सेठजी का कहना बिलकुल

युक्ति सगत है। पहिले आपको स्वीकृति देना चाहिए। सेठ ने मन में हर्षित होते हुए कहा—महाराज, आनेवाली इसी पचमी के दिन सर्व राज-परिवार के लिए सादर निमत्रण स्वीकार कीजिए। राजा ने सेठजी को स्वीकृति दे दी। और सेठजी हर्षित होते हुए अपने मकान पर आये। महाराज भी राजमहल चले गये।

घर पर जाते ही सेठजी ने सेठानीजी से कहा—मैं इसी पचमी [illegible] महाराज को सपरिवार भोजन का निमत्रण दे आया हू और महाराज ने स्वीकृति भी दे दी है। अत उस दिन के लिए भोजन की उत्तम [illegible] होना चाहिए, जिसे देखकर महाराज भी दग रह जाये। सेठजी [illegible] सेठानी बोली—आपकी बुद्धि को क्या हो गया है? दिन आनन्द [illegible] रहे है, तो उसमे अपने ही हाथ से क्यो आग लगाकर नष्ट करते [illegible] राजा का घर के ऊपर बोलना ही बुरा है, फिर उसे घर [illegible] और भी अधिक अनर्थकारक है। राजा लोगो से तो दूर [illegible] भली होती है। उन्हे अपना घर कभी नही दिखाना चाहिए। [illegible] भाव पलटते देर नही लगती है। सेठानी की बात सुनकर सेठ [illegible] अच्छी बात मे भी बुराई ही देखती हो। जानती नही कि [illegible] आय, [illegible] साधारण मनुष्य को भी निहाल कर देना है। [illegible]

निमत्रण दे देवे, इसमे अपने घर की शोभा है। सेठ ने कहा—इतने हजारो मनुष्यो के भोजन की व्यवस्था कर लोगी ? सेठानी बोली—घर मे किस बात का घाटा है ? सेठ बोला—अरी, तीन दिन मे हजारो की व्यवस्था कैसे करेगी। सेठानी बोली—आपको इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। सबको न्योता देना आपका काम है और सबको जिमाना मेरा काम है। कहो भाइयो, एक वह भी स्त्री है जो हजारो को खिलाने का भार अपने ऊपर लेती है और एक आपकी भी देविया है, यदि पच्चीस मेहमानो को घर ले जाओ तो वापिस उल्टे पैरो ही उतारना पडता है।

अब सेठजी दुकान पर गये और मुनीमजी से कहा—सारे शहर मे निमत्रण दे दो कि इसी पचमी के दिन सबका मय पाहुनो के यहा निमत्रण है। उस दिन किसी के यहाँ चूल्हा नही जलेगा। मुनीम ने प्रसन्न होकर कहा—आप ने यह बहुत उत्तम विचार किया है। मैं सबके यहा निमत्रण भिजवाने की व्यवस्था करता हू। तत्पश्चात् उसने सभी जातियो के मुखिया लोगो को बुलवाया और उनसे कहा—इसी पचमी के दिन सेठ साहब का विचार सारे शहर को प्रीतिभोज देने का है। अत आप लोग अपनी-अपनी जाति मे निमत्रण दिला देवे और पचमी के दिन बुलाने और सबको खिलाने-पिलाने की व्यवस्था का भार मजूर करे। सबने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

पचमी के दिन प्रीतिभोज की सारे शहर मे धूम मच गई। इधर सेठानी ने भी तैयारी मे कोई कसर नही रखी। वे समझती थी कि घर की शोभा तो स्त्री की चतुराई और घर की सुघड व्यवस्था से है। फिर अनेक पीढियो के बाद नगर-भोज का यह सुअवसर मुझे प्राप्त हो रहा है। दैव ने भी सर्व प्रकार से घर भरा-पूरा कर रखा है। फिर मै क्यो कजूसी करू ? क्या इस अपार धन-दौलत को मै या सेठजी अपनी छाती पर बाध करके ले जायेंगे ?

सेठजी ने भी हवेली के भीतर और बाहिर लोगो के बैठने की समुचित व्यवस्था की। सडको पर कनाते और शामियाने लगवा दिये गये, स्थान-स्थान पर हरे भरे गमले आदि रखवा दिये और महाराज एव राज-परिवार के बैठने के लिए [illegible] बैठक को विशेष रूप से सजा दिया गया।

पंचमी के दिन यथासमय सर्व राज-परिवार के एवं नगर-निवासियों के साथ महाराज जी जीमने के लिए पधारे। सेठजी ने उन सबकी समुचित अगवानी की और सबको यथास्थान भोजन के लिए बैठाया। सेठजी ने अपने भंडार में तीस हजार सोने के और तीस हजार चांदी के थालों को निकलवाकर उनमें ही सबके लिए परोसगारी कराई। किसी के लिए भी पीतल या कांसा का नाम नहीं था। सब थालों में सोने और चांदी की कटोरियां थीं। तरह-तरह की मिठाइयां, नमकीन, पूड़ी शाक और कचौड़ियां-पकौड़ियां परोसी गई। सारे भोजन करने वाले सेठजी की रसोई की प्रशंसा करने लगे। जब सबकी परोसगारी हो गई, तब सेठजी ने महाराज से भोजन प्रारम्भ करने की प्रार्थना की। महाराज के भोजन प्रारम्भ करने के साथ ही सबने [illegible] प्रारम्भ कर दिया। सहसा महाराज की नजर अपने सामने बैठे दीवानजी के ऊपर गई। वे सेठजी का यह ठाठ-बाट देखकर के आश्चर्य-चकित होकर [illegible]-लिखित से रह गये। ईर्ष्या से उनका हृदय जलने लगा और [illegible] हाथ में ही रह गया। तब महाराज ने कहा—दीवानजी, क्या [illegible] रहे हैं? खाना तो प्रारम्भ करो। दीवान बोला—महाराज, [illegible] [illegible] और पेट दुख रहा है?

देकर आपका अपमान किया है। कल और कोई उपाय से आपको यह नीचा दिखायेगा। अत शत्रु को उठते ही दबा देना चाहिए, अन्यथा पीछे उसको दबाना कठिन होता है। राजा ने बातो को ध्यान से सुना और सिर हिलाकर अपनी मूक सम्मति दीवान को दे दी।

जब सारे लोग भोजन कर चुके तो सेठजी ने सब को पान-सुपारी दिलाई और स्वय पानदान लेकर महाराज के सामने उपस्थित हुए तथा उनकी समुचित नजर न्यौछावर की। महाराज भी ऊपरी प्रसन्नता दिखाते हुए राजमहल चले गये।

दूसरे दिन महाराज ने एकान्त मे दीवानजी को बुलाकर पूछा—कहो क्या सलाह है ? उसने कहा—महाराज, बाईजी लाल बडी हो गई है। अब उनकी शादी की तैयारी करनी है। अत उसके बहाने से सेठजी के यहा से सोने-चादी के सब थाल मय कटोरी गिलासो के मगवालिये जावे। पीछे देना तो अपने हाथ की बात है।

हवाखोरी के समय राजा साहब ने सेठजी को बगीचे मे बुलाया। सेठजी गये और अभिवादन करके बोले—महाराज, क्या आज्ञा है ? राजा ने कहा—सेठजी, बाईराजा का विवाह करना है। सेठजी ने कहा—महाराज, विवाह का सारा खर्च मै उठाऊगा। महाराज, बोले—यह तो आपकी कृपा है। परन्तु मुझे शादी के लिए बर्तन-भाडो की आवश्यकता है। सेठजी ने कहा—आपको जिन बर्तनो की भी आवश्यकता हो, वो मेरे यहा से मगवा सकते है। यह सुनते ही दीवान ने बर्तनो की सूची जेब मे से निकालकर महाराज के हाथ मे दे दी। उन्होंने सेठजी को देते हुए कहा—इसके मुताबिक सब बर्तन राजमहल मे भिजवा दीजिए। और जो अन्य वस्तुए आपके यहां नहीं हो, उन्हें बाजार मे खरीद करके भिजवा दीजिए। सेठजी सबको भिजवाने की 'हा' भरकर अपने घर लौट आये। फिर दुकान पर जाकर उन्होंने सब व्यापारियो को बुलाया और उनसे कहा—महाराज की बाईराजा का विवाह होना है। उसके लिए इस-इस सामान की महाराज को आवश्यकता है, सो आप लोग, यह सामान राजमहल भिजवा दें और सबके रुपयो का भुगतान मै करूगा। ऐसा कहकर उन्होंने [illegible] थालो को [illegible] की तौल लिखा दी,

किरानेवालों को किराने की, कपड़ेवालों को कपड़ों की, एवं बर्तन जो अपने घर नहीं थे, उनकी सूची बर्तन वालों को लिखा दी। इसी प्रकार अनाज के व्यापारियों को गेहूं, चना, उड़द-मूंग आदि का परिमाण लिखा दिया और उन्हें विदा कर दिया।

यथासमय महाराज के यहां बारात आई और बाईराजा का विवाह धूम-धाम के साथ सम्पन्न हो गया। तब राजा ने दीवान से कहा कि विवाह तो हो गया है, अब सेठजी का माल कैसे हजम किया जाय? न्याय के अनुसार तो सब बर्तनादि वापिस करना चाहिए। इस प्रकार [illegible] सकता है। दीवान ने कहा—महाराज, आप इस बात की चिन्ता [illegible] मैं सब उपाय कर लूंगा, यह कहकर उसने सेठजी को बुलाकर कहा—[illegible], आप जैसे श्रीमन्त की कृपा से बाईराजा की शादी सानन्द [illegible] महाराज को भरपूर यश भी मिल गया है। अब आप [illegible] कबजा दिया जावे तो ठीक रहेगा। सेठ ने कहा—दीवान साहब, [illegible] कर, यह मैं देने के लिए तैयार हूं। दीवान ने कहा—और [illegible] तैयार कर लिया गया है। केवल चार गहनों की कमी है। [illegible]— [illegible] नाम बतलाइये—मैं उनको लाकर [illegible] [illegible]

लिए दहेज देने को इन चार गहनो की आवश्यकता है, अत इनको बाजार से खरीद कर मगा लिया जाय। मुनीम ने कहा—ये गहने तो यहा नही मिलेंगे। तब सेठ ने कहा—अच्छा दिसावर मे जो अपनी पन्द्रह सौ दुकाने हैं, उनको लिख दो कि ये चारो गहने खरीदकर जल्दी से जल्दी यहा भिजवा दिये जावें। सेठजी के हुक्म के साथ ही सब दुकानो को पत्र लिखा दिये गये। पन्द्रह दिन मे सब दुकानो से उत्तर आ गया। सब मे शब्द न्यारे-न्यारे होने पर भी सार बात एक ही लिखी थी। मुनीम ने सब पत्रो की फाइल सेठजी के हाथ मे दे दी। उन सब मे यही लिखा था कि "मुनीम-साहब, आपका पत्र मिला। पढकर बहुत दुःख हुआ। ऐसा मालूम पडता है कि सेठ साहब का दिमाग खराब हो गया है। इसलिए आप अच्छे वैद्यो से उनका इलाज करावे। अन्यथा सारा कारोबार समाप्त होते देर नही लगेगी। राजी खुशी के समाचार तुरन्त देवें।"

सेठजी ने सब पत्रो को उलट-पुलट कर देखा। सब मे एक ही बात लिखी थी। वे बडे असमजस मे पडे। अब मै क्या करू ? वे राज-दरबार मे गये, परन्तु मुख अत्यन्त उदास था। दीवान उन्हे देखकर जान गया कि मेरी करा-मात काम कर रही है। उसने सेठजी से पूछा—क्या चारो गहने तैयार है ? सेठ ने कहा—हा प्रयत्न कर रहा हू। दीवान बोला—सेठजी, केवल पन्द्रह दिन शेष है। यदि तीसवे दिन वे गहने नही आये, तो आपका सब घर-बार जप्त कर लिया जायगा। यह महाराज का हुक्म है।

सेठजी राज-दरबार से घर पर आये। और अपनी बैठक मे जाकर बेहोश होकर पड गये। पता चलते ही सेठानीजी आई और सेठजी को बेहोश देखकर वैद्यो को बुलाया। शीतोपचार किया गया। वैद्य ने कहा—नाडी की गति-विधि तो ठीक है। कुछ गर्मी चढी हुई है सो शीतोपचार से थोडी देर मे ठीक हो जायेंगे। शीतोपचार से कुछ शान्ति मिली और सेठजी ने आखे खोली। सेठानी ने पूछा—आपकी तबियत कैसी है ? सेठानी के शब्द सुनते ही सेठजी की आखो मे आसू गिरने लगे और कुछ बोला नही गया। सेठानी ने उन्हे ढाढस बधाया और माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—घबराने की क्या बात है,

मुझे बताइये । मैं सर्व संभव उपाय करूंगी । कई बार पूछने के बाद सेठजी बोले—क्या बताऊ ? तूने जो कहा था, वही सच हुआ ? सेठानी ने दिलासा देते हुए कहा—आखिर, मैं सुनू तो सही कि बात क्या है ? तब सेठ ने सारी बात सेठानी को कह सुनाई । और कहा कि आज हुक्म मिला है कि यदि पन्द्रह दिन में चारों गहने नहीं दिए तो घर-बार जप्त कर लिया जायगा । सेठानी बोली—आपको किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है । ये चारों गहने तो कभी से मेरी तिजोरी में रखे हैं । आप तो आनन्द से खाइए पीजिए और आराम कीजिए । सेठजी बोले—अरी, क्या तू भी मेरे साथ मजाक कर रही है ? मेरे तो प्राण संकट में पड़े हैं ? सत्य बता, क्या गहने तिजोरी में तैयार रखे हैं ? सेठानी ने कहा—नाथ, क्या ऐसे संकट के समय भी कोई भली-स्त्री अपने स्वामी के साथ मजाक कर सकती है ? आप बिलकुल निश्चिन्त रहें । समय पर चारों गहने राज-भवन पहुंचा दिये जावेंगे । सेठानी के ऐसे आश्वासन एवं प्रेम भरे मधुर वचनों को सुनकर बहुत शान्ति मिली । सेठानी ने कहा—आप बिलकुल निश्चिंत होकर राज-दरबार में जाते-आते रहें । दूसरे दिन जब सेठजी प्रसन्न चित्त राज-सभा में गये तो राजा ने दीवान से कहा—क्यों, दीवानजी आज खुश नजर आ रहे हैं ? इस [illegible] हैं ? दीवान बोला—महाराज, आप तो राजमद से मस्त हैं और यह [illegible] [illegible] है । ये गहने [illegible] [illegible]

तत्पश्चात् सेठजी दरबारी पोशाक पहिन कर राज-दरबार मे पहुचे। दीवान ने पूछा—क्या आप गहने लाये हैं? सेठ बोला—कौन से गहने? दीवान ने कहा—भोला, डाह्या, कपटी और नमक हराम। सेठ ने उत्तर दिया—ये गहने तो सेठानीजी के पास है। वे ही आकर स्वय देगी। तब दीवान ने सेठानी को बुलाने के लिए दासियो को भेजा। सेठानी पहिले से ही सज-धज कर तैयार बैठी थी। दासियो के पहुचते ही वह ठाठ-बाट से पालकी मे बैठकर के घर से चली। इधर राज-सभा मे लोग आपस मे चर्चा कर रहे है कि कौन से अद्‌भुत आभूषण हैं, हमने तो उनका नाम भी नही सुना? इसलिए सब लोग बडी उत्सुकतापूर्वक सेठानी की आने प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी समय सेठानीजी की सवारी राज-दरबार मे पहुची। और उन्होंने पालकी मे से उतर कर सभा मे प्रवेश किया। सारे सभासद विस्फारित नेत्रो से सेठानी की ओर देखने लगे।

सेठानी ने राजा के सामने जाकर उनका यथोचित अभिवादन किया और पूछा कि कौन से चार गहने चाहिए है? उनके नाम बतलाइये। दीवान बोला-भोला, डाह्या, कपटी और नमकहराम। ये नाम सुनते ही सेठानी ने कहा—महाराज, चारो ही आभूषण तैयार है। उनका इतना बहुमूल्य जडाव है कि आपके सारे राज्य के बेच देने पर भी उनकी कीमत पूरी नही होगी। यह सुनते ही सब लोगो का मुह उतर गया। और सोचने लगे कि अब क्या होगा? सेठानी फिर बोली—सब गहनो की कीमत मय मूल व्याज के पाई-पाई देनी होगी। गहने मेरे पास तैयार है, परन्तु उन्हे देने से पहिले मेरी एक विनती सुनली जाए—

> तुम दीसत के नर, दीसत हो, पर लच्छन तो पशु के सब्नहिये,
> खावत पीवत सोवत बैठत, रह्यो घर मे बन जात सरहिये।
> रात रही परभात चले सुन्दर यो नितभार वही ये,
> और तो लच्छन आन मिले, सिर्फ दोय कमी सिर सीगरु पूछ नहीये॥

महाराज, आप इनमे से तो मनुष्य है, बाकी सारे लक्षण तो पशु के है। [illegible] है ।। [illegible] है कि आपके सिर पर सींग नही और पीछे पूछ नही

महाराज, मेरा घर-धणी भोला था, जो आपसे मित्रता की। आप डाह करने वाले है ईर्ष्यालु हैं। जो आपकी बाई-राजा की शादी मे इतना धन लगा दिया, फिर भी आपको सन्तोष नही हुआ। डाही (चतुर) मैं हू सो दवामाल वापिस ले लूगी खानेवाले हे कौन ? जरा-आगे देखिये और यह मत्री कपटी है, जो छल-प्रपच बताकर आपके द्वारा घर जप्त कराना चाहता हे और आप स्वय नमकहरामी है जो मेरा इतना धन खा करके भी मुझे और मेरे घर को बर्बाद करना चाहता है ?

सेठानी की यह फटकार सुनकर राजा और दीवान दोनो मत्र-कीलित से रह गये। राजा का भूत उतर गया और मनमे सोचने लगे—सेठानी ने बात तो ठीक कही है और चारो गहने भी ठीक सभलवाये है। यह दीवान बडा पापी और कपटी हे। उसके मायाजाल मे फसकर के मैने यह अनुचित किया, जो सेठ के माल को ही हडपने की बात मनमे लाया। यदि सेठानी आकर आज यह भेद न खोलती तो बडा अनर्थ हो जाता। सारी सभा भी यह देखकर दग रह गई और सेठानी की प्रशसा करने लगी।

तत्पश्चात् राजा ने हुक्म दिया, इस बेईमान दीवान को डडे मारते हुए ले जाओ और जेलखाने मे बन्द कर दो। फिर राजा ने चूदडी मगवाई और सेठानी को उडाते हुए कहा—बहिन, तू ने आज मेरे राज्य की लाज रख दी। अन्यथा दुनिया मेरे मुख पर थूकती। उससे राजा ने माफी मागी और सेठ के सब चादी के बर्तन आदि वापिस भिजवा करके सेठ-सेठानी को विदा किया। पीछे विवाह मे जितना भी खर्च हुआ था, वह पाई-पाई हिसाब करके सेठ के यहा भिजवा दिया। और दीवान को फासी पर चढाने का हुक्म दिया। तब सेठानी ने कहा—महाराज इसे क्षमा किया जाए। इसमे केवल इसी का अपराध नहीं है, सभी की भूल है। मेरे निमित्त से किसी के प्राण जावे, यह मै नहीं चाहती हू। यदि फासी पर चढेंगे, तो तीनो ही चढेंगे ? मेरे धनी ने मित्रता करने की भूल क्यो की ? दीवान ने कपटाई क्यो की और आपने नमकहरामी के काम क्या किये ? अब यह प्रथम बार सब से अपराध हुआ है सो मैं सबको क्षमा करती हू। आगे से सबको अपने-अपने कर्तव्य का ध्यान रखना

१५ लोकपाल या आत्मपाल

सज्जनो, अभी आपके सामने लोकपाल का वर्णन आया है। लोकपाल शब्द का अर्थ क्या है? यह भी जानना आवश्यक है। 'लोकान् पालयतीति लोकपाल' अर्थात् जो लोकों-की प्रति पालना करे, उसे लोकपाल कहते हैं। इन्द्र ने चारों दिशाओं की रक्षा के लिए चार लोकपाल नियत किये हैं। उनमें सोमपूर्व दिशा का लोकपाल है, यम दक्षिण दिशा का, वरुण पश्चिम दिशा का और वैश्रवण उत्तर दिशा का लोकपाल है। जैसे आज राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, आन्ध्र, मद्रास, महाराष्ट्र और सौराष्ट्र आदि प्रदेशों की सरकारें हैं और उन सरकारों के ऊपर केन्द्र की ओर से राज्यपाल नियुक्त हैं। प्रत्येक प्रदेश की व्यवस्था संचालन राज्य सरकार करती है उसका उत्तरदायित्व राज्यपाल पर रहता है। सरकारों के मन्त्रियों को शपथ ग्रहण कराना राज्यपाल (लोकपाल) का काम है। जब किसी प्रदेश की सरकार में गड़बड़ी होती है, तब तब विधानसभा को भंग करने का अधिकार भी राज्यपाल को होता है। राज्यपाल का सम्बन्ध राष्ट्रपति से रहता है। जैसे यहाँ राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। वैसे ही देवलोक में लोकपालों की नियुक्ति इन्द्र करता है।

[illegible] है, [illegible] हिमालय वन, [illegible]

व्यवस्था मे कोई खराबी या गडबडी पैदा होती है, तो उसका दड उसे भोगना पडता है। यही बात राज्यपाल के विषय मे भी जाननी चाहिए। वह अपने सारे राज्य को पूर्ण रूप से सभाल रखता है और कोई वैधानिक सकट नही उत्पन्न होने देता। राष्ट्रपति के ऊपर सारे राष्ट्र का उत्तरदायित्व रहता है और वह सर्व राज्यपालो के कार्यों पर दृष्टि रखता है।

आत्मपाल कौन ?

भाइयो, अब मैं आपसे पूछता हू कि आपने इतने प्रकार के 'पाल' तो देखे। परन्तु क्या कभी 'आत्मपाल' भी देखा है, या उसका नाम भी सुना है ? अरे, अन्यपाल सदा स्थिर रहनेवाले नही है। किन्तु यह आत्मा स्थिर है और उसकी प्रतिपालना करने वाला भी स्थिर है। इसलिए हमे 'आत्मपाल' बनने की नितान्त आवश्यकता है।

आप लोग पूछेगे कि 'आत्मपाल' किसे कहते है। भाई, इसका उत्तर यह है कि जिन-जिन कार्यों से ये आत्मा का अहित होता है, आत्मा ससार-समुद्र मे डूबता है और दु खो को पाता है, उन-उन सर्व कार्यों से आत्मा की जो प्रतिपालना करे—रक्षा करे—उसे आत्मपाल कहते है। आत्मपाल सदा सतर्क और सावधान रहता है और सर्व ओर दृष्टि रखता है कि मेरे भीतर कोई दुर्भाव रूप शत्रु तो प्रवेश नही कर रहा है और कोई मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र तो नही रच रहा है। जैसे अभी दो दिन पूर्व यह समाचार-पत्रो मे प्रकाशित हुआ कि जोधपुर जेल मे आजीवन कैद की सजा भोगनेवाले कुछ डाकू कैदियो ने जेल के अधिकारियों से मिलकर और पुलिस का सहयोग पाकर के लोहे के सीकचे काटनेवाले औजार दिन मे मगालिए और लोगो की दृष्टि से बचाने के लिए उन्हे धूल मे छिपा दिया। उनका उद्देश्य रात मे अपनी बेडियो और जेल के सीकचो को काटकर भागने का था। परन्तु जेल का प्रधान अधिकारी सूक्ष्म दृष्टि वाला था, उसे इस षड्यन्त्र का पता लग गया और ठीक समय पर उसने [illegible] को [illegible] करवा लिया और वे सब औजार पकड लिए गये। भाई, यह अधिकारी जब अपने कर्तव्य-पालन मे पूर्ण सतर्क एव सजग था, तब उन लोगो का षड्यन्त्र सफल नही हो सका। यदि वह सावधान न होता, तो डाकू

अर्थात् कर्मों के आस्रव और बन्ध का अभाव होने से जब नवीन कर्मों का आना रुक जाता है और निर्जरा के द्वारा पूर्व-समागत कर्म झड जाते है, तभी सर्व कर्मों से छुटकारा होता है, और उसी का नाम मोक्ष है।

इसलिए आप लोगो को सर्व प्रथम उन कर्म शत्रुओ को जानने की आवश्यकता है। मूल कर्म शत्रु आठ है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय। इन के उत्तर भेद एक सौ अडतालीस या एक सौ अठावन है। परन्तु इनके नामो से और इनके भेदो के जानकार मात्र होने से हम इन से नही बच सकते हैं। इन कर्मों की जो सूक्ष्म चाल है उस पर हमे दृष्टि रखनी पडेगी कि किन-किन द्वारो से कर्म आते है और किन-किन भावो से ये हमारे ऊपर अधिकार जमाकर हम पर हावी होते है, इन सब बातो की जानकारी भी होना चाहिए और फिर जानकारी के बाद हमे वैसा आचरण करना चाहिए कि जिससे हमारे भीतर कर्मों का प्रवेश ही न हो सके। सर्वप्रथम हमे कर्मों के आने के मार्ग को बन्द करना होगा।

आत्मा का ध्यान किसे ?

परन्तु आज आप लोगो को अपनी आत्मा का ध्यान कहां है ? आज तो आपका ध्यान पुद्गल पर है और दिसावर की दुकानों पर है। आप यहां पर लोगों से मिलने का उद्देश्य लेकर आए है, अथवा साधु-सन्तो के दर्शनो का भाव लेकर आए है। परन्तु आपका मन तो दिसावर मे ही लगा हुआ है कि दुकान पर क्या हो रहा होगा ? बार-बार ध्यान वहीं पहुंच रहा है। और ठहरे हुए यहां हैं। अब आप जो देश मे आकर अपने सगे-सम्बन्धियों से मिलने का आनन्द लेने आये थे, वह भी नहीं ले पा रहे है, और साधु-सन्तों के समागम का, दर्शनों का जो लाभ लेना चाहिए, वह भी नहीं ले पा रहे है। क्योंकि मन में वहां की व्यापारिक बातों की आकुलता जो लग रही है, वह यहां आ करके भी आपको चैन (शान्ति) नहीं लेने दे रही है। मन मे यही भाव आ रहे है कि जितने लोगों से मिल लिए सो मिल लिए। अब बाकी मे फिर देखा जायगा। इस प्रकार आप लोग इधर आने के लाभ से भी वंचित रहे और उधर के लाभ से भी वंचित रहे। आपकी अवस्था उस त्रिशंकु के समान हो रही

के सार्थी है। आत्मा, कर्म, क्रिया और लोक ये चारो चरवहिए हमारे सिद्धात मे बताये है। इनमे कर्म और क्रिया इन दोनो को समझना अत्यावश्यक है क्योकि ये दोनो ही हमको दुख देते है। अत दुख देनेवालो को ही सर्वप्रथम देखना और जानना है।

कर्मबन्ध के कारण

कर्म तो आपको पहिले बतला दिए गए है। परन्तु वे कर्म जिन क्रियाओ से बधते है, उन्हे बतलाया जाता है—प्राणातिपात (हिंसा करना) मृषावाद (झूठ बोलना) अदत्तादान (चोरी करना) मैथुन सेना (कुशील सेवन करना) परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, पैशुन्यता, परपरिवाद, रहोऽभ्याख्यान, अरति, माया मृषावाद, मिथ्यादर्शनशल्य इन अठारह पापो की जो-जो परिणतिया है, उसे क्रिया कहते है। इन क्रियाओ द्वारा जो पुद्गल आत्मा मे आते है उसे कर्म कहते है।

कर्म और क्रिया के भेद को एक दृष्टान्त से स्पष्ट किया जाता है—जिस प्रकार आपके कुए की भूमि पर कपास उत्पन्न होता है तो उसे देखकर लोग जान लेते है कि इससे रुई निकलेगी और उससे सूत काता जायगा। और उससे वस्त्र बनाया जायगा। यहा पर वस्त्र के समान तो कर्म जानना चाहिए। और रुई निकालना और धागा कातना आदि क्रियाए है। सूत को लेकर जुलाहा क्या करता है? ताना-वाना करके वस्त्र बनाता है। ताना सीधा और वाना टेढी गति से चलता है। ताने को जोर नही पडता, वाने को जोर पडता है। जब ताने-वाने की क्रिया पूरी हो जाती है, तब वस्त्र तैयार हो जाता है। इसी प्रकार पाप करने की जो प्रवृत्ति होती है, वह क्रिया है। उस क्रिया से जो वस्त्र के समान निर्माण होता है, उसे कर्म कहते है। शास्त्रो मे क्रियाओ के भेद पच्चीस बताये गये है। और उन पच्चीस क्रियाओ के बावन हजार आठ सौ छिहत्तर (५२८[illegible]) भग (उत्तर भेद) होते है।

पाच मूल-क्रियाए

मूल क्रियाए पाच है—काइया (कायिकी) अहिगरणिया (आधिकरणिकी) पाउसिया (प्राद्वेषिकी) परितावणिया (पारितापनिकी) और पाणाइवाइया

किसी प्रकार का कोई रोग, शोक आदि नही है। उस मोक्ष या शिवपद का वर्णन शास्त्रकारो ने इस प्रकार से किया है—

जन्म-जराऽऽमय-मरणै. शोकैर्दु खैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाण शुद्धसुख नि श्रेयसमिष्यते नित्यम्॥

वह शिवपद जन्म, जरा, आमय (रोग) मरण, शोक, दु ख और सर्वप्रकार के भयो से रहित है, वहा पर आत्मोत्पन्न शुद्ध सुख प्राप्त है, सर्व प्रकार के वाण या शल्य से वह रहित है और नित्य स्थायी है। उसे ही ज्ञानीजन नि श्रेयस या निर्वाण कहते है।

उस मोक्ष मे रहने वाले मुक्त जीव कैसे होते ह। इस वात का वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते है—

विद्या-दर्शन-शक्ति-स्वास्थ्य-प्रह्लाद-तृप्ति-शुद्धियुज.।
निरतिशया निरवधयो नि श्रेयसमावसन्ति सुखम्॥

उस नि श्रेयस मे निवास करने वाले मुक्त जीव हीनाधिकता से रहित अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्ति (वीर्य) स्वास्थ्य, आनन्द, तृप्ति और परम विशुद्धि को धारण करते हुए सुखपूर्वक अनन्तकाल तक निवास करते है। और भी कहा है—

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवाना न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोक-सम्भ्रान्तिकरणपटु॥

यदि इस ससार मे तीनो लोको को उलट-पुलट कर देने वाला कोई बडा भारी उत्पात भी होवे, तो भी उन शिवनिवासी सिद्ध भगवन्तो के अनन्त कल्पकाल बीत जाने पर भी कभी कोई विकार नही होगा। किन्तु वे सदा नित्यानन्दरूप अमृत का पान करते हुए अनन्तकाल तक अपने शुद्ध स्वरूप मे ही रहेंगे।

भाइयो, जिन पुरुषो ने धर्म और क्रिया का भलीभाति से अध्ययन किया और अपनी आत्मा को इससे सुरक्षित रखा, वे ही महापुरुष इस ससार-सागर से पार होकर इस प्रकार के मोक्ष महल मे निवास करते है। जो आत्मवान है वे ही आत्मा के इस शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करते है। हमे भी अब आत्मवान

अपेक्षा उन दोनो के ज्ञानो मे कोई भेद नही था। यदि कोई भेद था, तो वह केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष का था। भगवान् अपने केवलज्ञान के द्वारा समस्त ज्ञेय पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से जानते थे और गौतम स्वामी अपने श्रुतज्ञान के द्वारा उन्ही ज्ञेय पदार्थों को परोक्ष रूप से जानते थे। जैसा कि कहा है—

स्याद्वाद-केवलज्ञाने सर्व तत्त्वप्रकाशने।
भेद. साक्षादसाक्षाच्च श्रुत-केवलयोर्मतः ।।

द्वादशाङ्गरूप स्याद्वाद श्रुतज्ञान और केवलज्ञान से दोनो ही सर्वतत्त्व के प्रकाशक है। अर्थात् दोनो ही सर्वज्ञेय पदार्थों को जानते है। श्रुतज्ञान और केवलज्ञान मे भेद तो साक्षात् (प्रत्यक्ष) और असाक्षात् (परोक्ष) का ही है।

गणधर सर्व द्वादशाङ्ग के पारगामी होते हैं और वे उपयोगपूर्वक ही वचन निकालते है। इसलिए उनके द्वारा सर्व प्राणियो का सदा हित ही होता है, वहा किसी के अहित होने की कोई बात ही नही है।

आज लोग कहते है कि अमुक स्थान पर अमुक सन्त ठहरे थे। उन्होंने कोई ऐसी बात कह दी तो भारी बवडर खडा हो गया। कहिये, क्या हो गया? यदि उनका अपने वचनो पर नियत्रण होता, भाषा-समिति रखते तो ऐसा अवसर क्यो आता। भाई, साधु को तो हित, मित, प्रिय वचन ही मुख से निकालना चाहिए। सभा मे सभी प्रकार के मनुष्य आते है। कोई नवीन ज्ञान उपार्जन की भावना से आते है, कोई केवल सुनने के लिए आते है, कोई शका-समाधान के लिए आते है और कोई छिद्रान्वेषण के लिए ही आते है कि इनके मुख मे कोई ऐसा-वैसा शब्द निकले, तो इनका अपमान किया जाय। ऐसे व्यक्ति तो आकरके कुछ न कुछ ऐसा काम करेगे और ऐसी बात कहेंगे कि जिससे सभा मे कुछ न कुछ बखेडा खडा हो जाय।

बोलने मे विवेक

भाई, एक बार उदयपुर मे श्वेताम्बर समाज के तीनो ही सम्प्रदायो के सन्तो का चातुर्मास था। पूज्य श्रीलालजी, महाराज साहब, श्री धर्मविजयजी और तेरहपन्थियो के पूज्य भी थे। तथा वैष्णव सम्प्रदाय के महन्तजी का भी चातुर्मास था। इस प्रकार चार सम्प्रदाय के साधु वहा पर थे। जहा पर स

जाने की बात कही तो उन मुसद्दियो और अन्य मतवालो को बहुत बुरी लगी। आखिर यह बात राणाजी के कानो तक पहुच गई। राणाजी ने कहा-उन सब को यहा से निकाल दो। पहिले तो राजाओ के हाथ मे शासन की लाठी थी। वे जब जैसा चाहे, वैसा ही करने मे समर्थ थे। उस समय वहा पर बलवन्तसिह जी कोठरी मौजूद थे। उन्होने राणा साहब का यह हुक्म सुनते ही कहा—महाराज, सबको क्यो निकालते है ! हमारे आचार्य जी को भी तो पूछिये कि वे इस सम्बन्ध मे क्या कहते है ? और क्या उन्होने भी यह बात कही है ? जिन्होने कही हो, उन्ही को निकालिये। तब राणाजी ने कहा—पुरोहितजी, कोठारीजी के साथ इनके आचार्यजी के पास जाओ और उनसे पूछो कि कृष्णजी भगवान् कहा गये है ? तब पुरोहितजी कोठारीजी के साथ वहा गये। उस समय पूज्य श्रीलालजी महाराज बागमे विराजमान थे। वहा जाकर पुरोहित जी ने पूज्य श्री जी से पूछा—महाराज, श्रीकृष्णजी कहा गये है ? तब आचार्य श्री जी ने कहा—पुरोहितजी, आपने अनेक बार भागवत पढी है ! फिर हमसे क्या पूछ रहे हो ? वे राजा बलि के द्वार पर गये है। उन्होने पूछा-क्यो गये महाराज ? तब आचार्य श्री ने कहा—पुरोहितजी, आपको ज्ञात ही होगा कि राजा बलिने ९९ यज्ञ किये थे और यज्ञ करके सारे भूमंडल पर अपना अधिकार कर लिया था। फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नही हुई। तब उसने सौवा यज्ञ प्रारम्भ किया। और उस यज्ञ की पूर्णाहुति होते उसका स्वर्ग पर भी अधिकार हो जाता। यह देखकर इन्द्रादि सब देवगण भयभीत हुए और वे सब मिलकर विष्णु महाराज के पास गये और उनसे निवेदन किया कि प्रभो, बलिको समझाओ। उसने सारी पृथ्वी पर अधिकार कर लिया। फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नही हुई। और अब वह यह सौवा यज्ञ करके हमारे स्वर्गलोक पर भी अधिकार करना चाहता है। भगवन्, यदि उसने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया तो हमें बड़ा क्लेश होगा और देवलोक मे विप्लव मच जायगा। यह सुनकर विष्णुजी ने कहा—इन्द्र, तुम घबराओ नही, मै इसका उपाय करता हू। तब इन्द्रका दुःख दूर करने के लिए उन्होंने वामन ब्राह्मण का रूप धारण किया और बलिराजा के द्वार पर गये। वहा जाकर

लिए वहां जाना पड़ा। पुरोहितजी की बात सुनकर राणाजी ने कहा—अच्छा वे रहें। और जिन्होंने कहा—उन्हें निकाल दो। अन्त में उन्हें क्षमा-याचना करनी पड़ी तब रह सके। इसलिए मैं कहता हूं कि जो मनुष्य बिना विचारे यद्वा-तद्वा वचन बोलते हैं, वे आस्रव के द्वार खोलते हैं। फिर उनके कर्मों का संवर कैसे हो सकता है?

भाइयो, जब एक गृहस्थ पुरुष भी विचार करके बोलता है तब साधु को तो बहुत विचार के साथ ही बोलना चाहिए। देखो—अभागी और मन्दभागी दोनों ही शब्द समान अर्थ वाले हैं। किन्तु यदि किसी से अभागी कह दिया जावे तो उसे बहुत दुःख होता है, उसका चेहरा बिगड़ जाता है। इसलिए बोलते समय सावधानी की आवश्यकता है। आज जैनियों में समता क्या नहीं है? क्योंकि उन्होंने गुरु को भी कुछ नहीं समझा और धर्म को भी कुछ नहीं समझते हैं। वे अपनी वस्तु को भी अपनी नहीं समझते हैं, फिर यदि वे दूसरा के लिए अनर्गल वचनों का प्रयोग करें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। देखो—कहां तो केवलज्ञान के धनी सर्वज्ञ भगवान् और चार ज्ञान के धनी गौतम स्वामी। और कहां आज के अल्पज्ञ मनुष्य! फिर भी लोग यह कहते नहीं चुकते कि अमुक विषय में भगवान् चूक गये। गौतम चूक गये! भाई, यह बात कैसे सही जा सकती है। जो बालक अभी पहिली कक्षा में 'अ, ब' ही सीख रहा है, वह यदि एम. ए. में पढ़नेवाले से कहे कि तुम चूक गये, या अशुद्ध बोल रहे हो, तो क्या उसकी बात विश्वास करने के योग्य है? जब हमें मति—श्रुतज्ञान भी पूरा नहीं है, तब हमें चार ज्ञान के धारियों की चूक बताने का क्या अधिकार है? और क्या यह हमारी सज्जनता और कृतज्ञता है? जो इस प्रकार कहने में भगवान तक से नहीं चूकते हैं, तो वे यदि अन्य के लिए कुछ यद्वा-तद्वा कह दें, तो कौन सी बड़ी बात है। जो लड़का अपने दादाजी और पिताजी के भी थप्पड़ मार दे, वह यदि अपने बड़े भाई से कुछ कहे, तो कौन सा आश्चर्य है? परन्तु भाई, हमें अपने वचनों पर लगाम रखना चाहिए। यदि कोई हत्यारा या अनार्य पुरुष है और यदि हम उसका मुकाबिला करने के लिए उद्यत हों, तो दुनिया हमें ही बुरा कहेगी। जैसे गोबर पर पत्थर फेंकोगे तो

इस दिन भगवान् महावीर के उच्च आदर्शों को हम स्वय अपने जीवन मे लाकर ससार के सामने एक आदर्श के रूप मे उपस्थित हो कि हमे देखकर दूसरे लोग भी महावीर का जय जयकार करते हुए उनके मार्ग पर चलने के लिए तैयार हो। तभी यह भगवान् महावीर की जन्म-जयन्ती की छुट्टी सार्थक होगी।

सज्जनो, ये महावीर-जयन्ती, पर्युषण आदि पर्व हमे यही प्रेरणा देने के लिए आते है कि अभी तक तुम पेटपाल ही बने रहे। अब उसे छोडकर और आत्मा की साधना करके आज से आत्मपाल बनो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

वि० स० २०२७, आसोजवदि-१४
सिंहपोल, जोधपुर

●●

शव्द है। एक-एक शव्द के सयोग से पद बनता है, पदो के सयोग मे वाक्य बनते है। और वाक्यो के सयोग से श्लोक, सूत्र आदि की रचना होती है। इसप्रकार की जो रचनाए सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है, उन्हे आगम, शास्त्र, ग्रन्थ आदि कहा जाता है। इन आगम-ग्रन्थो मे विभिन्न स्थलो पर नाना प्रकार के विपयो का वर्णन आया हुआ है। उनका पूर्वापर की सगतिपूर्वक वास्तविक अर्थ निकालने के लिए गुरु-गमता की आवश्यकता है। अध्ययन या पठन करनेवाले मनुष्य को पहिले गुरु-मुख से उसके अर्थ की वाचना लेनी चाहिए। वाचना लेते समय अध्येता को अपनी बुद्धि के द्वारा उस अर्थ का अवधारण करना आवश्यक है। यदि कही पर पूर्वापर-विरोध प्रतीत हो, अथवा अर्थ-विपर्यास प्रतिभासित हो तो उसका गुरु-मुख से निर्णय लेना और शका का समाधान करना भी जरूरी है। जो इस प्रकार आगम-ग्रन्थो का गुरु-मुख से अध्ययन करेगा, उसे जिन-भापित और गणधर-ग्रथित इन आगमो के विपय मे कही पर भी रचमात्र शका नही रहेगी।

चार अपेक्षाओ से विचार करो!

आगमो मे प्रत्येक तत्त्व का निर्णय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से किया गया है और वक्ता या श्रोता को इन चारो के आश्रय से तत्त्व-प्रतिपादन करने और तत्त्वग्रहण करने का उपदेश दिया गया है। जो इन चारो बातो को ध्यान मे नही रख करके किसी बात का कथन करते है, उनके कथन मे अवश्य ही विसगति आयेगी। जैसे आप यहा पर व्याख्यान सुन रहे है, अब आप मे किसी भाई ने अपनी बहिन या बेटी से जोकि स्त्री-समुदाय मे बैठी थी,—आख या हाथ-द्वारा कोई इशारा किया। उस समय दूसरे जो लोग यहा पर बैठे है और जिन्हे यह ज्ञात नही है कि आप जिसे इशारा कर रहे है, वह आपकी ही बहिन-बेटी है, तो वह यही कहेगा, कि इस मनुष्य को इतनी भरी सभा मे किसी स्त्री की ओर इशारा करते हुए शर्म नही आती है। भाई, दूसरो को ऐसा कहने का अवसर क्यो आया? इसीलिए कि उस व्यक्ति ने न तो क्षेत्र का विचार किया कि यह सभास्थान है, यहा पर हमे ऐसा इशारा नही करना चाहिए। [illegible]

अपनी इच्छा से बुद्धिपूर्वक जो हिंसा की जाती है, झूठ बोला जाता है, चोरी और जारी आदि कुकर्म किये जाते है, वे भी आपने अपनी इच्छा से किये। इस प्रकार आपका यह दुष्कर्मोपार्जन भी स्वैच्छिक है। इस प्रकार पुण्य कर्मोपार्जन मे भी आपकी इच्छा ही कारण रही और पाप कर्मोपार्जन मे भी आपकी इच्छा कारण रही।

लोग कहते है कि आजकल तो अमुक व्यक्ति का सितारा चमक रहा है, अमुक का भाग्य खूब फल रहा है और अमुक खूब कमाई मे है। भाई, यह सब उसके पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म के उदय से हो रहा है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के ऊपर आपत्ति पर आपत्तियां आ रही है और घाटे पर घाटा आ रहा है, तो यह भी उसके पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से हो रहा है। यद्यपि लाभ या हानि का मूल कारण पूर्वोपार्जित पुण्य या पाप कर्म है, तथापि जब मनुष्य बुद्धिपूर्वक भला या बुरा कार्य करता है, तब उसे जो हानि या लाभ होता है, उसे पुरुषार्थ-कृत माना जाता है। और बिना पुरुषार्थ के अकस्मात् जो हानि—लाभ होता है, उसे दैवकृत माना जाता है। जैसा कि कहा है—

> बुद्धि पूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात्।
> अबुद्धि पूर्वापेक्षायामिष्टानिष्ट स्वदैवतः॥

अर्थात् बुद्धिपूर्वक भला-बुरा कार्य करने पर जो इष्ट-अनिष्ट होता है, वह अपने पुरुषार्थ से हुआ जानना चाहिए। तथा अबुद्धिपूर्वक जो इष्ट-अनिष्ट होता है, वह दैव से किया हुआ जानना चाहिए।

भाग्य और पुरुषार्थ

किसी गाव मे एक छोटा सा साहूकार रहता था। एक वर्ष दुष्काल पड गया। इससे उसका सारा व्यापार ठप्प हो गया। पुरानी उगाही भी वसूल नहीं हो सकी। आमदनी के सब साधन बन्द हो गये और खाने तक की कमी महसूस होने लगी। उसने सोचा कि अमुक नगर मे मेरा मित्र रहता है और वह श्रीमन्त भी है, अत उसके पास चलना चाहिए। वह जिस किसी प्रकार मार्ग के अनेक कष्ट उठाकर वहा पहुचा। उसने जाते ही उस श्रीमन्त मित्र को राम-राम किया। उसने भी पास मे बिठाते हुए पूछा—कहो भाई, कैसे आना

नयन पदारथ नयन रस, नयनों-नयन मिलत ।
अनजानिया से प्रीडो, पहिले नयन करत ॥

मनुष्य के भीतर का भाव आखो मे सबसे पहिले दिखाई पड जाता है कि इसके हृदय मे प्रेम है, या द्वेष ? यह आखो से छिपा हुआ नही रहता है।

जब वह भोजन कर चुका तो सेठ ने कहा—आप बैठक मे आराम कीजिए, मैं भोजन करके आता हू। यह कहकर सेठ भीतर चला गया और किवाड बन्द करके भोजन करने को बैठा। सेठ के लिए सेठानी ने बदाम का सीरा, मलाई, दहीवडे आदि अच्छे माल परोसे और सेठ जीमने लगा। इधर इसके मनमे आया कि जाकर मैं भी देखू कि सेठ क्या खा रहा है ? यह विचार कर वह किवाडो के पास गया और किवाड की दराज मे से देखा कि सेठ तो बढिया माल उडा रहा है। वह सोचने लगा कि मैं यहा व्यर्थ आया। जहां पर आखो मे स्नेह नही हो, वहा पर यदि धन भी मिले तो नही जाना चाहिए। तुलसीदास जी ने कहा है—

आवत ही हर्ष नहीं, नयननि नहीं सनेह ।
तुलसी तहा न जाइये, जो धन बरसे मेह ॥

देखो, हम दोनो बचपन के साथी और एक गामवासी। जीवन मे पहिली बार आया, फिर भी इनकी आखो मे प्रेम नही दिख रहा है और सेठानी ने भी मुझे दूसरा भोजन खिलाया और पति को दूसरा खिला रही है। यहा पर मेरा ठहरना ठीक नहीं है। यह सोचता हुआ वह वापिस बैठक मे जाकर के लेट गया।

जब सोने का समय हुआ तो सेठ ने सेठानी से पूछा कि उसे कहां सुलाया जाय ? वह बोली—मेरे से क्या पूछते हो, जहां ठीक समझो, वहा पर सुला दो। सेठ बोला—दुकान की गादी पर सुला दू ? सेठानी ने कहा—हा, वहीं सुलाना ठीक रहेगा। सेठ ने कहा—अरी, वहा तो मच्छर बहुत है, मच्छरदानी दे दो। सेठानी बोली—मच्छरदानी उनके लिए थोडे ही है। सेठ ने उसे ले जाकर के दुकान पर सुला दिया। वह लेट गया, पर ऊपर मे मच्छरो के

ऐसे बन्धु ही सच्चे बन्धु और मित्र है। अन्यथा मगे भी यमदूत है। नीतिकार मे ठीक ही कहा है—

> समदुःखसुखा एव बन्धवो ह्यत्र बान्धवा.।
> दूता एव कृतान्तस्य द्वन्द्वकाले पराङ्मुखाः॥

जो लोग विपत्ति के समय दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझे और उसके सुख को अपना सुख समझे, वे ही ससार मे सच्चे बान्धव है। जो द्वन्द्वकाल मे—आपत्ति के आने पर पराङ्मुख रहते है, दुःख मे सीरी नही होते है, वे तो कृतान्त (यमराज) के दूत ही है। ऐसा विचारता हुआ वह डाकखाने गया और घर को मनीआर्डर करके सीधा सेठ की दुकान पर पहुचा। उसके आते ही सेठ बोला—भाई, सबेरे से ही कहा चले गये थे? उसने बताया कि मैं प्रात उठकर नदी पर निबटने गया था। लौटते समय गाव का एक परिचित भाई मिल गया। वह साथ ले गया। उसी के यहा खा-पीकर मै अब अपना समान उठाने के लिए आया हू।

सेठ बोला—उसके यहा क्या है, रहने को भी किराये की झोपडी है, मेहनत-मजदूरी करता है, खाने का भी ठिकाना नही है। फिर वहा जा करके क्या करोगे? तब यह बोला—सेठजी, आपका कहना सच है, उसके यहा यह सब कुछ भी नही है, पर वहा मानवता है, प्रेम है और सहृदयता है। उसकी झोपडी आपकी इस हवेली से बढकर है, उसकी रूखी-सूखी रोटिया भी आपके सीरा-पूडी से बेहतर है और उसका हृदय तो साक्षात् भगवान का हृदय है। देखो, कल मेरे मागने पर भी पचास रुपये देने के लिए टालमटूल कर दी। पर उसने बिना मागे ही पचास रुपये घर भेजने को दिये, जिनका मनीआर्डर करके डाकखाने से आ रहा हू। देखो—यह उसकी रसीद है। साथ ही उसने आज से ही अपने काम-काज मे आधे हिस्से का भागीदार बना लिया है। अब बतादये, यहा सब कुछ है, या आपके यहा? कि मेरे आने का कारण सुनते ही आपका चेहरा उतर गया। भोजन मे भी दुभाती की और सुनाया भी बहुत—जहा पर कि मच्छरो और खटमलो के मारे रात को एक मिनिट भी नही सो सका। सेठजी, आप अपने मन मे भले ही अपने को बडा सेठ मानते रहे, पर मेरे लिए

अब आज आप लोग उनके भक्त कहानेवाले इन गाधीवादियो को देखें, कि वे लोग उनकी अहिंसा के नारे की आवाज लगाते हुए भी हिंसा का भरपूर प्रचार और प्रसार कर रहे है। आये दिन बड़े-बडे कसाईखाने खोले जा रहे हैं जहा पर लाखो गाये, भैसे और अन्य पशु निर्दयता पूर्वक काटे जा रहे है, मत्स्य-पालन, कुक्कट-पालन का प्रचार कर सबको अडे मुर्गी-और मछली खिला रहे हैं। महात्माजी ने जिस मद्य-निषेध के लिए अनेको बार पिकेटिंग किया, लाठियो की मार हजारो के साथ खाई और जेल गये, आज उनके ये भक्त उसी मद्य का प्रचार ही नही कर रहे हैं, बल्कि स्वय भी मद्यपायी हो रहे हे। गाधीजी ने राजाओ और रईसो को मिटाने की बात कभी नही कही। उन्होंने यही कहा कि पूजीपति अपनी पूजी को गरीबो की ट्रस्ट समझे और राजा लोग अपने को राज्य का सेवक समझकर प्रजा की सेवा करे। परन्तु आज ये गान्धीवादी सब काम उनका नाम लेकर ठीक उनके विपरीत कर रहे है। मुसलमानो और अग्रेजो के जमाने मे भी कभी कसाईखाने और शराबखाने राज्य की ओर से नही चलाये गये। आज उनके भक्त इस मास-मदिरा के प्रचार से ही देश का उद्धार समझ रहे है। इन बुरे कार्यों से न देश का उद्धार होगा और न उनके भक्तो का। ये सब देश का और अपना भविष्य अन्धकारमय बना रहे हैं और अश्लील फिल्मो को प्रोत्साहन देकर व्यभिचार का प्रचार कर रहे हैं। ऐसे समय मे प्रत्येक जैनी का कर्तव्य है कि वह इस मद्य, मास और सिनेमा-प्रचार के विरुद्ध आन्दोलन कर भारत के और अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करे। यही सच्चा कर्मयोग है।

वि० स० २०२७, आसोज सुदि–२

सिहपोल, जोधपुर

है। जो आज तक चली आई और आगे भी जब तक तीर्थंकर उत्पन्न होते रहेंगे, तब तक चली जायगी और वे दिक्कुमारिया सेवा के लिए बराबर आती रहेगी।

सेवा के दो भेद

सेवा दो प्रकार की होती है—लौकिक सेवा और लोकोत्तर सेवा। अब यह जानना आवश्यक है कि लौकिक सेवा किसे कहते हैं और लोकोत्तर सेवा किसे कहते है ? लौकिक सेवा यह है कि कही भूकम्प आया, दुष्काल पड गया, भीषण बाढ आगई, या इसी प्रकार की कोई दूसरी परिस्थिति खडी हो गई और लाखो मनुष्य गृह-विहीन हो गये, एक-एक दाने के लिए मोहताज हो गये, अपने कुटुम्बीजनो से बिछुड गये, उनके पास ठहरने को भी स्थान नही रहा, दवा-दारू के बिना बेमौत मरने लगे, उस समय जो लोग करुणाभाव से भीजकर उनकी सेवा करते है, उनके खाने-पीने की सुविधा जुटाते है, उनकी दवा-दारू करते है, उन्हे अन्न और वस्त्र प्रदान करते है और आनेवाली विपत्तियो से बचाते है, तथा विपद्-ग्रस्तो का उद्धार करते है, इन सबके करने को लौकिक सेवा कहते है। इस लौकिक सेवा को भगवान ने पुण्य कार्यों मे विवेचन किया है। जैसे—अन्नपुण्ये, प्राणपुण्ये, लयन-(स्थान-)पुण्ये, शयनपुण्ये आदि नवप्रकार के पुण्य है। विपत्ति मे पडे हुए व्यक्तियो को अन्न-जल देना, ठहरने को मकान देना, नगो को वस्त्र देना आदि। बीमारो की परिचर्या करना भी पुण्य कार्य है। मनपुण्ये, वचनपुण्ये और कायपुण्ये भी कहा गया है। अर्थात् दूसरो के प्रति अपने मन मे सद्भाव रखना, वचन से धैर्य बधाना, और काय से सेवा-टहल करना भी पुण्य कार्य है, यह सब लौकिक सेवा है।

यहा आप कहेगे कि अन्नपुण्ये आदि कार्य भी तो पुण्य के बन्ध कराने वाले है और पुण्य का फल परलोक मे मिलता है, अत उक्त कार्यो को लोकोत्तर सेवा क्यो न कही जावे ? भाई, आपका पूछना ठीक है, किन्तु यहा पर लोकोत्तर का अर्थ दूसरा है और लौकिक का अर्थ दूसरा है। जिस जाति की पुण्यवानी से लौकिक धन-वैभव प्राप्त हो, अनुकूल कुटुम्ब-परिवार मिले, नीरोग और स्वस्थ शरीर मिले, अच्छे मित्र और साथी मिले एव अन्य सभी प्रकार के

दोनो की सेवा के लिए मै तैयार हू। यह सुनते ही उसने कहा—वह तो हम अन्धो का सहारा था, वही हमारे एकमात्र पुत्र था। उसी को तूने मार दिया। अब हमे पानी देने वाला कोई नही रहा। याद रख, अन्तिम समय तुझे भी पानी का देने वाला कोई नही रहेगा। यह कहते ही उन दोनो के प्राण-पखेरू उड गये। दशरथ को उनके शाप से चार-चार पुत्रो के होते हुए भी सचमुच अन्तिम समय पानी देने वाला एक भी पुत्र नही था।

भाइयो, इस कहानी के कहने का मतलब यह है कि मरते हुए भी श्रवण-कुमार के मुख से यही निकला कि मुझे अपने मरने की चिन्ता नही है, मगर मेरे अन्धे मा-बाप की सेवा कौन करेगा? इसे कहते है सच्ची मातृ और पितृ-भक्ति। यदि वह आज के सपूतो मे आ जाय तो दुनिया की काया पलट जाय। आप लोग कहेगे कि महाराज, हम इतनी भक्ति करते है, वह क्या है? भाई, भक्ति कहने की वस्तु नही है। जिसमे वह भक्ति होती है, वह तो विना कहे ही अपने-आप दृष्टिगोचर हो जाती है कि यह भक्ति है, और यह युक्ति है। भक्ति और वस्तु है और युक्ति और वस्तु है। सच्ची भक्ति छिपायी नही छिपती है और बनावटी या दिखाऊ भक्ति का पर्दाफाश या भण्डा फोड हुए भी नहीं रहता है। यह जो कर्मास्रवयुक्त ससार की सेवा की जाती है, उसे कहते है लौकिक सेवा। और कर्मास्रव से रहित किन्तु कर्म-निर्जरा के लिए जो सेवा की जाती है, उसे कहते है लोकोत्तर सेवा। लौकिक सेवा का फल है—लोक मे यश मिलना और परलोक मे आज्ञाकारी स्त्री-पुत्रादि, धन-वैभवादि की एव स्वर्गादि की प्राप्ति होना। लौकिक-सेवा पुण्य-साधक है। किन्तु लोकोत्तर सेवा धर्म-साधक है, उससे अनादि सचित कर्मों की निर्जरा होती है, नवीन पापास्रव का सवर होता है और साक्षात् या परम्परा मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसीलिए कहा गया है कि—

'सेवाधर्मो परमगहनो योगिनामप्यगम्य.'।

तलवार की तेज धार पर चलना तो आसान है। परन्तु सेवा करना कठिन है। दुष्कर तपस्या करनेवाले व्यक्ति मिल जायेंगे, उत्कृष्ट ज्ञानवान् विद्वान् भी मिल जायेंगे और गर्म रसो के यावज्जीवन त्यागी भी बहुत मिल जायेंगे।

तपस्या करने के बाद भी स्त्रीलिंग का छेद नहीं कर सके। भाई, तपस्या या कोई भी अन्य कार्य बिना भाव के सफल नहीं होते हैं। महान् शासन-प्रभावक सिद्धसेन दिवाकर ने कहा—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥

हे जन-बान्धव भगवन् मैंने अनेक भवों में आपका उपदेश, और आपके दर्शन भी किये। किन्तु भक्ति से अपने चित्त में तुझे स्थान नहीं दिया, तुझे अपने हृदय में धारण नहीं किया। हे स्वामिन्, यह उसका फल है कि आज भी मैं दुःखों का पात्र हो रहा हूँ—अर्थात् दुःख भोग रहा हूँ। क्योंकि भाव-शून्य कोरी क्रियाएं सुफल नहीं देती हैं।

भाई, कितना ही भाव-शून्य क्रियाकाण्ड करो, वह सब व्यर्थ जाता है। श्रेयांसकुमार का जीव भी उत्तम मुनियों के साथ एक मुनि था, तपस्वी और त्यागी था। वह पाठ और महापीठ की सेवा-भावना की प्रशंसा किया करता था, उनके गुण-गान करता था। उसके फलसे वह स्वर्ग जाकर इस भव में श्रेयांसकुमार हुआ। उसे सभी लौकिक वैभव भी प्राप्त हुआ और भगवान् ऋषभदेव को वर्ष भर की तपस्या के पश्चात् सर्वप्रथम पारणा कराने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। जो दान की प्रवृत्ति इस भरत क्षेत्र में अठारह कोटा-कोटी सागरोपम से बन्द थी, उसका प्रवर्तन श्रेयांस ने किया और वे इस युग के दान तीर्थ आदि प्रवर्तक रूप से संसार में आज भी प्रसिद्ध हैं। उन्हें इस रूप में भरत और बाहुबली से भी अधिक यश प्राप्त हुआ।

सज्जनो, सारी पुण्यवाणी का मूल पाया सेवा है। सेवा करने में हमें कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। बन जितनी लोकोत्तर सेवा तो करनी ही चाहिए। परन्तु नागरिक सेवा में तो किसी प्रकार की कमी रखनी ही नहीं चाहिये। घर [illegible] कुटुम्ब-परिवार की अड़ोसी-पड़ोसियों की, मोहल्ले वाले [illegible] की, [illegible] की सेवा का जब भी, जैसा अवसर हाथ लगे,

२० | साधना का मार्ग

साधना के तीन स्तर

सज्जनो, कल आप लोगों ने सेवाधर्म की बात सुनी थी। यह सेवा साधना के लिए की जाती है। साधना तीन प्रकार की होती है--भौतिक साधना, लौकिक साधना और आध्यात्मिक साधना। किसी कार्य की सिद्धि के लिए सामग्री के एकत्रित करने को तथा उससे सफलता प्राप्त करने के लिए किये जानेवाले प्रयास को साधना कहते हैं। जैसे आपको सीरा बनाना है, तो उसके लिए मैदा, कढाई, आग, पानी, घृत, शक्कर और बनाने वाला व्यक्ति आदि जितने भी साधन हैं, उन्हें इकट्ठे करके जो बनाने का प्रयत्न किया जाता है वह सीरा की साधना है। साधन के बिना साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती है।

भौतिक कार्यों की सिद्धि के लिए जो साधना की जाती है, उसे भौतिक साधना कहते हैं। युद्ध के लिए नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों का निर्माण करना, रहने के लिए नाना प्रकार के मकान, हवेली और बंगले आदि बनाना, बावड़ी कुए आदि खुदवाना और बगीचे आदि लगवाना भौतिक साधना के अन्तर्गत है।

दूसरी लौकिक साधना है। विवाह आदि करना, व्यापार करना, आजीविकार्थ खेती-बाड़ी, नौकरी-चाकरी आदि करना लौकिक साधना है। शरीर को स्वस्थ रखना, व्यायाम करना, वायुसेवनार्थ घूमना, यश के उपार्जन के लिए

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी डार अन्तर भेदिया,
वर्णादि अरु रागादि तें, निजभाव को न्यारा किया।
निज माहि निज के हेतु निज कर आपको आपै गह्यो,
गुण-गुणी, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मझार कछु भेद न रह्यो ॥

निर्विकल्प साधना

जब ज्ञानी-पुरुष बाहिर में शान्तदशा धारण करके अपने अन्तरंग में अतितीक्ष्ण सुबुद्धिरूपी छैनी को डालकर आत्मा के ऊपर चढ़े हुए इस वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श वाले देह से, तथा राग-द्वेष आदि विकारीभावों से अपने आत्म-स्वरूप को न्यारा करता है, उस समय उसे अपनी आत्मा के भीतर केवल सत्-चिद् आनन्दरूप शुद्ध आत्मा के दर्शन होते है। उसी अवस्था में आत्मा अपने ही द्वारा अपने ही शुद्ध-स्वरूप को ग्रहण करके स्थिरता को प्राप्त करता है। उस निर्विकल्पदशा में मेरे भीतर ये गुण है, और मैं गुणी हू, ऐसा विकल्प भी जागृत नही होता है। तथा मैं ज्ञाता हू, यह मेरा ज्ञान है और मैं इस ज्ञेय को जान रहा हू, इस प्रकार की कर्त्ता, कर्म और क्रिया की भी प्रतीति नही होती है। उस समय इन सब विकल्पो से रहित एक अखण्ड ज्ञान-ज्योति ही अन्तरंग में प्रकाशमान दृष्टिगोचर होती है, उसे ही आत्मस्वरूप का दर्शन, या भगवत्साक्षात्कार, या आत्मानुभूति आदि अनेक नामो से लोग पुकारते है। इस प्रकार के आत्म-दर्शन के लिए जितने भी प्रयास या उपाय किये जाते है, वे सब आध्यात्मिक भावना के अन्तर्गत जानना चाहिए।

सामायिक आदि जितने भी धार्मिक कार्य किये जाते है, वे आत्मस्वरूप की प्राप्ति के साधन है। बाह्यकार्यों को छोड़कर एकान्त मौन रखना, मुखपत्ति बांधना आदि बाह्य क्रियाए तो द्रव्य सामायि[illegible] उस समय में उक्त प्रकार से जो आत्म-चिन्तन किया जाता है और प[illegible] परम प्रशम-भाव प्रकट होता है, वह भाव सामायिक है। भाव सा[illegible] [illegible]ही आत्म-भावना है। द्रव्य सामायिक का तो फोटो लिया जा [illegible] पर भाव सामायिक का फोटो नही लिया जा सकता, क्योंकि वह [illegible] है और उसका [illegible] भी [illegible] इन पौद्गलिक [illegible]

चाण्डाली के गर्भ मे जाये विश्वामित्र तप से ब्राह्मण कहलाये और महामुनि बने। इसलिए जाति किसी के छोटे या बडे कहलाने मे कारण नही है।

पहिले के पुरुषो मे भेदभाव नही था। मध्ययुग मे मद से मग्न पुरुषो ने ये जातियो के वाडे बनाये और मनुष्य-मनुष्य मे भेदभाव खडा कर दिया और घोषित कर दिया कि मन्दिरो मे हरिजनो को जाने का अधिकार नही है। परन्तु याद रखो—सबल सदा सबल नही रहता और निर्बल भी सदा निर्बल नही रहते। समय सदा बदलता रहता है। आज इस कांग्रेसी शासन मे आप अपने को ऊंचा मानते हो, जहा आपकी पहुच नही है, वहा पर हरिजनो की पहुच है और आपसे पहिले उनकी वात सुनी जाती है।

आज होटल, सिनेमा, रेल-मोटर आदि सब जगह वे आपके कधे से कन्धा मिलाकर बैठते है। अब कहा गया आपका वह जातिमद ? लोग कहते है कि महाराज, आप भी जमाने के साथ हो गये है ? भाई, हम जमाने के साथ नही है, किन्तु हम तो भगवान महावीर के साथ है, जिन्होने कि जातिमद और कुलमद के त्यागने का उपदेश दिया है। मद आठ प्रकार का होता है—

> जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।
> इनको गर्व न कीजिए, ये मद अष्टप्रकार।
> जाति का मद कुछ नहीं, करते सो गहना।
> उत्पत्ति सारे मनुज की, सोचे क्यो नहि बहिना।

आप प्रतिदिन पढते है, यह स्तुति आज की बनाई हुई नही है। यह आचार्य रायचन्दजी की बनाई हुई है जो जयमलजी म० के पाटवी थे। हमारे पूर्वजो ने कहा कि किसी जाति मे उत्पन्न होने से कोई बडा या ऊच नही कहा जा सकता। किन्तु व्रत, तप, सयम, नियम और त्याग-प्रत्याख्यान से ही मनुष्य बडा या ऊच कहा जाता है। भगवान के दरबार मे तो सबको ही समानरूप से आने का अधिकार है। जब आपके पास अधिकार आया तो आपने ये दीवारे खडी कर दी। परन्तु भगवान ने कभी किसी को अपने दरबार मे आने से मना नही किया।

सर्वप्रकार की जोगवाई है, अन्तराय भी टूटी हुई है, बुद्धि-विवेक और नीरोग शरीर भी है और धर्म-श्रवण का अवसर भी प्राप्त हुआ है। फिर भी सयम-साधना के भाव नही हो रहे है। आप कहेगे—महाराज, अभी समय नही है। अभी तो हमे दिसावर जाना है ? तो भाई, कौन मना करता है ? आप आराम से पधारो। परन्तु याद रखो कि दिसावर भी दो हैं। इस दिसावर मे तो अनन्तकाल से जा आरहे हो। अब उस दिसावर मे जाओ, जहा से कभी लौटने का काम नही रहे और सदा ज्ञानामृत पान करते हुए अनन्तसुख से रहना सभव हो। यही आध्यात्मिक साधना का फल है। इस ओर हमारा सदा ध्यान रहना चाहिए।

वि० स० २०२७, आसोज सुदि ४

सिहपोल, जोधपुर,

●●

४ शा० चम्पालाल जी डूंगरवाल, नगरथपेठ, बेंगलोर सिटी (करमावास)

५ शा० कामदार प्रेमराज जी, जुमा मस्जिद रोड, बेंगलोर सिटी (चावण्डिया)

६ शा० चांदमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर, मद्रास, ११ (चावण्डिया)

७ जे. वस्तीमल जी जैन, जयनगर बेंगलोर ११ (पुजलू)

८ शा० पुखराज जी सीसोदिया, ब्यावर

९ शा० बालचंद जी रूपचन्द जी बाफना,
  ११८/१२० जवेरीबाजार बम्बई–२ (सादड़ी)

१० शा० बालाबगस जी चम्पालाल जी बोहरा, राणीवाल

११ शा० केवलचन्द जी सोहनराज बोहरा, राणीवाल

१२ शा०अमोलकचन्दजी धर्मीचन्दजी आच्छा,बड़ीकांचीपुरम्,मद्रास (सोजतरोड)

१३ शा० भूरमल जी मीठालाल जी बाफना, तिरुकोयलूर, मद्रास (आगेवा)

१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादड़ी)

१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम्, मद्रास (सेवाज)

१६ शा० सिमरतमल जी सखलेचा, मद्रास (बीजाजी का गुडा)

१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (काणा)

१८ शा० मूलचन्दमल जी शांतिलाल जी ललेसरा, एनावरम्, मद्रास

१९ शा० चम्पालाल जी नेमीचन्द, जबलपुर (जैतारण)

२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर, ब्यावर

२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, कुप्पल (मारवाड़-मादलिया)

२२ शा० हीराचन्द जी लालचन्द जी धोका, नयाबाजार, मद्रास

२३ शा० नेमीचन्द जी धर्मीचन्द जी आच्छा, नगतपेट, मद्रास

२४ शा० एन० घीसुलाल जी पोकरना, नार्थ आरकाट—N A D T
  (अगड़ी नगर)

२५ शा० घीसुलाल जी पारसमल जी सिंघवी, नागापेट, मद्रास

२६ शा० अमोलकचन्द जी भंवरलाल जी [illegible], नयाबाजार, मद्रास

२७ शा० पी० [illegible] नेमीचन्द [illegible], [illegible]

२८ शा० [illegible] जी माणकचन्द जी [illegible], [illegible]

७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जी भंडारी, नीमली

८ श्री माणकचन्द जी गुलेछा, ब्यावर

९ श्री पुखराज जी बोहरा, राणीवाल वाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

१० श्री धर्मीचन्द जी बोहरा, जुठावाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

११ श्री नथमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चन्डावल

१२ श्री पारसमल जी शान्तीलाल जी ललवाणी, बिलाडा

१३ श्री जुगराज जी मुणोत, मारवाड जक्शन

१४ श्री रतनचन्द जी शान्तीलाल जी मेहता, सादडी (मारवाड)

१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भंडारी, बिलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी नेमीचन्द जी कटारिया, बिलाडा

१७ श्री गुलाबचन्द जी गम्भीरमल जी मेहता, गोलवड
[तालुका डेणु—जि० थाणा (महाराष्ट्र)]

१८ श्री भवरलाल जी गौतमचन्द जी पगारिया, कुशालपुरा

१९ श्री चनणमल जी भीकमचन्द जी राका, कुशालपुरा

२० श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा

२१ श्री सतोकचन्द जी जवरीलाल जी जामड,
१८६ बाजार रोड, मदरानगतम

२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोणम्

२३ श्री धरमीचन्द जी ज्ञानचन्द जी मूथा, बगडीनगर

२४ श्री मिश्रीमल जी नगराज जी गोठी, बिलाडा

२५ श्री दुलराज जी इन्दरचन्द जी कोठारी
११८, तैयप्पा मुदलीस्ट्रीट, मद्रास-१

२६ श्री गुमानलाल जी मागीलाल जी चोरडिया, चिन्ताधरी पेठ मद्रास-१

२७ श्री मायरचन्द जी चोरडिया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१

२८ श्री [illegible] जी जवरचन्द जी चोरडिया, मेडता सिटी

२९ श्री हस्तीमल जी निहालचन्द जी गादिया, १६२ कोयम्बूर, मद्रास

३० श्री [illegible] जी अमरचन्द जी [illegible], पाली

४४ शा० पारसमल जी लक्ष्मीचन्द जी काठेड, व्यावर

४५ शा० धनराज जी महावीरचन्द जी खीवसरा, बैंगलोर ३०

४६ शा० पी० एम० चोरडिया, मद्रास

४७ शा० अमरचन्द जी नेमीचन्द जी पारसमल जी नागौरी, मद्रास

४८ शा० वनेचन्द जी हीराचन्द जी जैन, सोजतरोड, (पाली)

४९ शा० भूमरमल जी मागीलाल जी गूदेचा, सोजतरोड (पाली)

५० श्री जयन्तीलाल जी सागरमल जी पुनमिया, सादडी

५१ श्री गजराज जी भडारी एडवोकेट, वाली

५२ श्री मागीलाल जी रैड, जोधपुर

५३ श्री ताराचन्द जी वम्व, व्यावर

५४ श्री फतेहचन्द जी कावडिया, व्यावर

५५ श्री गुलावचन्द जी चोरड़िया, विजयनगर

५६ सिधराज जी नाहर, व्यावर

५७ श्री गिरधारीलाल जी कटारिया, सहवाज

५८ श्री मीठालाल जी पवनकवर जी कटारिया, सहवाज

५९ श्री मदनलाल जी सुरेन्द्रराजजी ललवाणी, वीलाडा

६० श्री विनोदीलाल जी महावीरचन्द जी मकाणा, व्यावर